अंकुर

[११ मौलिक कहानियाँ]

लेखक

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

सरस्वती प्रेस

बनारस

प्रथम संस्करण, २०००, जनवरी १९४५

युद्ध-जनित अतिरिक्त व्यय-सहित
मूल्य २)

मुद्रक—श्रीपतराय, सरस्वती-प्रेस, बनारस

विषय-सूची

अंकुर

सग्गियाँ के पण्डित जयराम की लड़की सेंकरी के मन में बचपन ही से जिस चीज़ की उत्कट लालसा पैदा हो गई थी, वह सोने के आभूषण थे और उनमें भी सुनहरी कंगन तो जैसे उसकी आकांक्षा की चरम-सीमा ही बन गये थे।

सग्गियाँ की ग़रीब देहातनों को तो चाँदी की बालियों, चूड़ियों, कड़ों, कंठों तथा ऐसे ही अन्य रजत-आभूषणों के अतिरिक्त किसी दूसरी चीज़ का ज्ञान भी न था, पर गाँव के साहूकार ला० शंकरदास की लड़की का विवाह, जब जालन्धर के एक धनाधीश के लड़के से हुआ तो गहनों में एक चीज़ आई, जिसकी प्रशंसा सबने मुक्त कंठ से की और वह चीज़ थी सुनहरी कंगन। उन दिनों बाजूबन्दों का भी रिवाज था और ढोलक पर गाती हुई लड़कियाँ 'जुत्ती सितारियाँ वाली' की तरज़ पर

वे बन्द ले दे! वे बन्द ले दे! सोने दे—

भावें तेरी पग्ग बिक जाए!*

भी गाया करती थीं, पर औसत दर्जे के मध्यवर्गीय, जो जहेज़ में दोनों गहने न रख सकते थे, कंगन ही बनवाया करते थे।

तब सग्गियाँ की देहातनों के लिए तो सब ही गहने आँखें खोल देनेवाले थे, पर कंगनों को देखकर तो आँखों के साथ उनका मुँह भी खुला रह गया। प्रायः सभी ने उन्हें हाथों में लेकर देखा—१६ तोले से कहीं अधिक भारी होंगे। पाँच सौ से भी ज़्यादह के! और सग्गियाँ की ग़रीब देहातनों के लिए ऐसे बहुमूल्य गहने देखना स्वप्न में भी दुर्लभ था, फिर क्यों न वे उन्हें एक बार हाथ में लेकर देखने का गर्व अनुभव कर लेतीं।

---

* ऐ मेरे मालिक मुझे बन्द ले दे, मुझे बन्द ले दे—सोने के बन्द! चाहे तेरी पगड़ी बिक जाए!

उन्हीं में अपनी माँ के साथ लगी खड़ी सेंकरी भी थी। उस समय उसे प्रबल इच्छा हुई कि वह भी एक बार इन भारी कंगनों को अपने नन्हें हाथों में लेकर देख ले, पर अपनी इच्छा को माँ के सम्मुख रखने का वह साहस न कर सकी।

माँ तो एक बार गहनों को देखकर फिर अपने काम में जा लगी। बारात को अभी आना था और उसे बहुत से काम करने बाक़ी थे—बेचारी ग़रीब ब्राह्मणी, समय पर पुरोहिताइन के साथ साथ उसे महरी भी बन जाना पड़ता था। पर सेंकरी उसके साथ नहीं गई। माँ और सखी-सहेलियों को छोड़ मोहित-सी वह दीवार के साथ सिर लगाये खड़ी रही। उसकी दृष्टि वहीं आभूषणों पर जमी रही। जब जब गाँव की स्त्रियाँ उन आभूषणों को उठा-उठाकर देखतीं तो कल्पना ही कल्पना में वह भी ऐसा ही करती, यहाँ तक कि गहनों का स्पर्श तक उसे अपनी अँगुलियों में महसूस होता।

जब नव-बधू को उबटन लगाकर नहलाया गया और उसे गहने पहनाये गये तो सेंकरी की दृष्टि उसकी कलाइयों पर ही जम गई।

तभी उसकी एक सहेली भागी भागी आई और ईंट का छोटा-सा रोड़ा दिखाते हुए उसने कहा—देख मैं यह लाई हूँ, आ ढोलक बजायें, पर सेंकरी वहाँ से नहीं हिली।

बाहर बाजे बजने लगे और बारात की आमद-आमद का शोर मच गया। स्त्रियाँ और बच्चे सब छतों पर जा चढ़े और दूसरे क्षण विवाह के मीठे गान वायु के कण-कण में गूँज उठे।

सेंकरी वहाँ से नहीं हिली, बल्कि जब बधू अकेली रह गई, तो वह सकुचाती उसके पास जा बैठी। चुपचाप घुटनों पर अपना सुन्दर मुखड़ा रख बधू अपने पाँवों के मेंहदी रँगे अँगूठे से धरती कुरेद रही थी। उसका ध्यान जाने किधर था? शायद वह एक ही दिन में अपने लड़की से बहू बन जाने की बात सोच रही थी। अपनी कलाइयों पर जमी हुई सेंकरी की दृष्टि और उस दृष्टि की उत्सुकता को देखकर वह मुस्कुराई। सेंकरी की अँगुलियाँ, तब जैसे अनजाने ही में कंगनों को छूने का प्रयास कर रही थीं। दुल्हिन ने हाथ ढीला छोड़ दिया और सेंकरी ने उन कंगनों को और उनके साथ की

चूड़ियों को जी भर देखा और उसके हृदय का उल्लास उसके मुख पर प्रतिबिम्बित हो उठा।

तब दुल्हिन हँसी। उसने इधर-उधर देखा और फिर मुस्कुराते हुए बोली—तुम्हारे विवाह में भी ऐसे ही कंगन पड़ेंगे।

कहते हैं २४ घंटे में किसी न किसी क्षण प्रत्येक व्यक्ति की जिह्वा पर सरस्वती आ बैठती है। दुल्हिन की ज़बान पर भी उस समय शायद सरस्वती ही आ बैठी थीं। क्योंकि जब सेंकरी के विवाह में वर पक्ष की ओर से आई हुई साचक़ के थालों पर से पतला हरा बुर्जी काग़ज़ उठाया गया तो गहनों के थाल में दूसरे स्वर्ण आभूषणों के अतिरिक्त चमकते हुए भारी कंगनों की जोड़ी भी थी। देखकर सेंकरी मन में फूली न समाई थी। जब उसे उबटन मलकर नहलाया गया और उसकी कुन्दन-सी कलाइयों में कंगन डाले गये तो जैसे वे शरीर ही का अंग दिखाई देने लगे। सेंकरी की आयु उस समय केवल १३ वर्ष की थी, पर उसके स्वस्थ अंग जवानी के स्वर्ण-प्रभात में, सुगठित और सुडौल साँचे में ढले हुए प्रतीत होते थे। कंगन उसकी कलाइयों में ऐसे फ़िट बैठे कि कुछ क्षण बाद सेंकरी को उनमें से एक को वहाँ से खिसकाना पड़ा। तब उसके स्थान पर रक्त इकट्ठा हो जाने से लाल-सी चूड़ी बन गई। बहुत देर तक विमुग्ध-सी वह उसे देखती रही और फिर हाथों में पड़े तौली की लम्बी-लम्बी तारों में बँधे कलीरों और नाक में पड़ी हुई बड़ी शिकारपुरी नत्थ को सँभालती-सँभालती वह उठी और जाकर सहेलियों को अपना एक-एक गहना उसकी बनावट, उसकी जड़ाई और गढ़ाई दिखाने लगी। तब रह-रहकर उसे इच्छा होती—काश वह बधू, वह उनके यजमान शंकरदास की लड़की भी वहाँ होती तो अपनी भविष्यद्वाणी के प्रभाव को देखती।

सेंकरी के उल्लास तथा कुतूहल को देखकर बड़ी बूढ़ियाँ अपने पोपले मुँह लिये हुए हँसती और उसके भाग्य को सराहती हुई दुआएँ देतीं—भिखमंगे ब्राह्मण की लड़की इतने बड़े घर जा रही है, इतने धनी के घर! तो वे क्यों न उसके भाग्य को सराहें, पर गाँव की युवतियों को उसके भाग्य के प्रति कोई ऐसी ईर्ष्या न हुई थी। इतने बहुमूल्य सुन्दर गहने, उस दरिद्र ब्राह्मण की लड़की के अंगों में पड़े देख यदि कुछ को जलन हुई भी, तो यह जानकर

कि चारपाई पर चारपाई जा रही है और पचासवर्षीय दूल्हे की पहली पत्नी अभी बैठी है, उनमें से बहुतों ने मुँह बिचका-बिचकाकर कह दिया था—संसार में सब कुछ गहने-कपड़े ही तो नहीं होते !...

× × ×

सेंकरी के पति पण्डित महेश्वरदयाल जालन्धर के प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। उन्होंने ज्योतिष-विद्या कहाँ से सीखी, इस सम्बन्ध में तो कई तरह की बातें प्रसिद्ध हैं, कोई कुछ कहते हैं, कोई कुछ, पर प्रचलित कहानी यह है कि वे "पट-फेरा" करते थे, मतलब यह कि रँगने और कूटने के बाद रेशम की जो तारें आपस में उलझ जाती थीं, उसकी नये सिरे से गुच्छियाँ बनाते थे। किन्तु जापानी माल आने से जहाँ दूसरे घरेलू धन्धों को हानि पहुँची, वहाँ जालन्धर का यह प्रसिद्ध व्यवसाय भी ख़त्म हो गया। तब लाला लोगों ने तो सराफ़े और बज़ाज़ी की शरण ली, पर पंडितजी के लिए तो पुरखों के व्यवसाय का दरवाज़ा खुला था। कुछ सोये हुए यजमान जा जगाये, कुछ दबे हुए उखाड़ डाले, और कुछ मुर्दे ज़िन्दा किये और धड़ल्ले से पुरोहिताई आरम्भ कर दी। इससे भी सन्तोष न हुआ तो एक दिन खोपड़ी घुटा, लम्बी चोटी को गाँठ दे, माथे पर चन्दन के लम्बे-लम्बे टीके लगाकर और गले में राम-नाम का डुपट्टा लपेट आपने अपने ज्योतिषी होने का एलान कर दिया।

वैसे ज्योतिषी के नाते, आप की धाक शायद उम्र भर न जमती, पर भाग्य बलवान् था। आपको पहले ही कुछ सट्टे की लत थी और ज्यों ज्यों सारे ंजाब में उसके फल-स्वरूप जालन्धर में सट्टे का बाज़ार गर्म होता जाता, आप की यह लत भी बढ़ती जाती। तभी ऐसा हुआ कि दो-तीन बार आप को दो-दो हज़ार रुपया सट्टे में आ गया। बस आपने यह साबित कर दिया कि यह सब ज्योतिष ही का प्रताप है। फिर क्या था, सारा दिन 'सटई' आप को घेरे रहते। पण्डित जी संकेतों में बातें करते। जिनका अंक आ जाता, वे उनकी प्रशंसा करते, नज़राने देते, जिनका न आता वे समझते, उन्होंने पण्डितजी का संकेत समझने में ग़लती की है। आगामी अंक पाने के हेतु वे और नज़राने देते। दोनों ही तरह पंडितजी की चाँदी थी। अल्पकाल ही में आपने जालन्धर

में अपना एक बड़ा मकान और दो दुकानें बनवा लीं, और नक़द भी काफ़ी जमा कर लिया।

इस सब धन-वैभव के बावजूद भी पण्डितजी दुखी थे। कारण यह कि उनकी इस सम्पत्ति को उनके बाद सम्हालनेवाला कोई न था। पत्नी थी पर बच्चा कोई न हुआ था और इधर आयु उनकी ५० वें वर्ष को पार कर रही थी। इन्हीं दिनों में जालन्धर की एक बारात के साथ वे सगिग्याँ गये। तभी जयराम पुरोहित के साथ उनकी भेंट हुई और तभी कंचन-जैसी उसकी लड़की को देखकर उनके मुँह में राल टपक आई। इतना हुआ तो फिर सब प्रबन्ध कर लेना ज्योतिषी महेश्वरदयाल के लिए कुछ कठिन न था। पण्डित जयराम तथा उनकी ब्राह्मणी को, इस अपनी कड़वी बेल की तरह बढ़नेवाली लड़की को किसी न किसी तरह पार लगाने की चिन्ता थी। फिर वे ऐसा सुअवसर पाकर कैसे चूकते? विशेषकर जब बातों बातों में अपनी जायदाद का विवरण देते हुए, ज्योतिषीजी ने, उस सुख का भी ज़िक्र कर दिया था, जो उनके घर में बड़ी बेचैनी से नव-वधू की प्रतीक्षा कर रहा था। दोनों ओर से सब ख़र्च का प्रबन्ध भी उन्होंने अपने ज़िम्मे ले लिया और इस प्रकार लड़की को योग्य और धनी वर के हाँथों सौंपकर पण्डित जयराम और उनकी पत्नी ने सुख की साँस ली और अपनी इस जायदाद का उत्तराधिकारी पाने की आशा के पुनः अंकुरित होने से ज्योतिषी महेश्वरदयाल एक बार फिर वृद्ध से युवा हो उठे।

× × ×

ससुराल आने पर गहनों के प्रति सेंकरी का मोह और भी बढ़ गया। विवाह के बहुमूल्य आभूषणों के अतिरिक्त माथे का चाँद, हाथों के लच्छे, बाजू का अनन्त, सिर का शिकार-पट्टी और गले का रानी-हार पण्डितजी ने बनवा दिये। कई तरह की साड़ियाँ ला दीं। अपने अभाव को अपनी श्रद्धा से पूरा करना अनायास ही वृद्ध प्रेमी जान जाते हैं। किन्तु जिस प्रकार बच्चा एक खिलौना पाकर दूसरे के लिए लालायित हो उठता है, सेंकरी भी एक चीज़ पाकर दूसरी फ़रमाइश कर देती और पण्डित तुरन्त ला देते। किन्तु दोनों के दृष्टिकोण में महान् अन्तर था। बच्चा खिलौना पाकर अपनी कृतज्ञता से माँ-बाप को प्रसन्न करने के बदले अपने हमजोलियों के मन में ईर्ष्या उत्पन्न करना,

उन्हें अपनी इस नई सम्पत्ति से प्रभावित करना श्रेयस्कर समझता है। इसी प्रकार सेंकरी भी जब आभूषण पहनती तो पण्डितजी के पास बैठने के बदले अपनी सहेलियों को वह सब दिखाने के लिए उसका मन व्यग्र हो उठता। पण्डितजी अपने घुटे हुए सिर पर हाथ फेरते हुए ललचाई आँखों से लावण्य की इस अनुपम मूर्ति को देखकर कहते—"तुम तो स्वर्ग की अप्सरा हो,' और उसे अपनी ओर खींचने का प्रयास करते।

पर सेंकरी अपने मैके जाने के लिए मचल पड़ती।

वास्तव में गहने-कपड़े पहनते-पहनते कुछ विचित्र प्रकार की कुसमुसाहट उसके शरीर में पैदा हो जाती, कुछ अज्ञात-सी आकांक्षा उसके हृदय में सुलगने लगती, किन्तु ज्योतिषीजी की ओर उसके मन में कुछ भय-सा बना रहता और वह उनकी उपस्थिति से एकदम भाग जाना चाहा करती, इसी लिए सदैव ऐसे अवसरों पर किसी न किसी तरह रो-रुलाकर वह मैके चली जाती। वहाँ जब उसकी सहेलियाँ उल्लास तथा ईर्ष्या के मिले-जुले भावों के साथ उसका अभिनन्दन करतीं, उसके गहनों को हाथों में ले-लेकर हँसी-हँसी में पहन-पहनकर देखतीं, तो वह कृत-कृत्य हो जाती।

उसकी सहेलियाँ सोचतीं—काश हमें इनमें से एक गहना भी प्राप्त हो सकता! और उनकी माताएँ उस ब्राह्मण की छोकरी को इतने बहुमूल्य गहनों· कपड़ों में आवृत्त देखकर एक दीर्घ निश्वास छोड़तीं और सोचतीं—क्यों न उनकी लड़कियों को भी ऐसा घर मिला? बला से पति उम्र का पका हुआ होता, लड़की तो राज करती।

किन्तु इस राज्य की वास्तविकता क्या है, शीघ्र सेंकरी को इसका पता चल गया। बात यह हुई कि इस अपने पति के राजा होने पर भी सेंकरी को वही अपने गाँव का ग़रीब घर अच्छा लगने लगा। धीरे-धीरे मैके रहने की उसकी अवधि बढ़ती गई, यहाँ तक कि एक बार जब पण्डितजी उसे लेने गये तो उसने जाने से साफ़ इन्कार कर दिया। उसने ऐसा क्यों किया, इसका भली भाँति विश्लेषण तो वह स्वयं भी न कर पाई थी, पर उस 'राज-घर' में

जैसे उसका दम घुटने लगता था। तब पण्डितजी ने सोने के बड़े-बड़े मनकों की कण्ठी बनवा देने का वादा किया। माँ ने समझाया था—बेटी, पति ही नारी का साथी है, उसका देवता है, यहाँ तक कि उसका परमेश्वर भी वही है, जैसे वह रखे, जिस हाल में रखे, उसी में रहना चाहिए! और पिता ने उसे पहले झिड़कियाँ दीं, और फिर वादा दिया कि उसे शीघ्र ही बुला लिया जायगा। तब कहीं जाकर सेंकरी तैयार हुई, पर जब उसने फिर मैके जाने की ज़िद की तो पण्डितजी ने उस झिड़क दिया—वहाँ किससे आशनाई है, जो नित उठकर भागती रहती है? उन्होंने कटु स्वर में कहा।

सेंकरी सन्न खड़ी रह गई थी। वह रोई न थी, चिल्लाई भी न थी, बस मूक मर्माहत खड़ी रही थी। क्षोभ से उसका गला भर आया था। तब कपड़े उसने उतार फेंके थे, गहने अन्दर ट्रंक में बन्द कर दिये थे, सुहाग की निशानी केवल दो-दो चूड़ियाँ हाथों में पड़ी रहने दी थीं और फैसला कर लिया था कि अब चाहे मर भी जाय तो मैके न जायगी।

वहीं खड़े खड़े तब उसके सामने गाँव के कई भोले-भाले युवकों के चित्र फिर गये थे, जिनको वह 'भाई' कहती थी, दिल को टटोलकर उसने देखा था, क्या इनमें किसी के साथ उसकी आशनाई थी? हल्की-सी मुहब्बत भी थी? दिल में उसे कहीं भी कुछ न दिखाई दिया था, हलकी-सी लहर भी नहीं, उसके भोले-भाले दिल ने अभी पुरुष को इस रूप में देखना भी न सीखा था। और तब वह फफक-फफककर रो उठी थी।

ज्योतिषीजी ने देखा—निशाना बहुत आगे पड़ा है। स्वयं ही ख़याल आया कि उनसे ज़्यादती हो गई है। तब उन्होंने उसे चुप कराने का प्रयास किया। खिसियानी-सी हँसी भी हँसे, गुदगुदाया भी, पर सेंकरी न खिली।

दूसरे दिन पंडितजी सराफ़ की दूकान से सोने के बड़े-बड़े मनकोंवाली सुन्दर कंठी ले आये। सेंकरी ने उसे देखा। क्षण भर के लिए उसकी आँखों में चमक पैदा हुई, पर ज्योतिषीजी की बात का ध्यान आ जाने से दूसरे क्षण वह मिट गई। पंडितजी ने जब डिब्बा उसे दिया तो उसने चुपचाप उसे लेकर रख लिया। उन्होंने लाख कहा कि इसे ज़रा पहनकर दिखा दो, देखें तो सही तुम्हारे सुन्दर गले में कैसी सजती है, पर सेंकरी चुप बैठी रही। हारकर

उन्होंने कोसा भी, ताने भी दिये, झल्लाये भी, और फिर उठकर बैठक में चले गये और जाने कितनी जन्म-पत्रियाँ खोल-खोलकर ढेर लगा, उनमें बैठ गये।

उस वक्त तो सेंकरी ने वह कंठी नहीं पहनी पर जब पंडितजी चले गये तो उसे पहनकर देखने के लिए उसका मन बेचैन होने लगा। एक बार उसने उसे डिब्बे से निकाला भी पर फिर वहीं रख दिया। तभ हंदा * लेने-वाली ब्राह्मणी परमेश्वरी का लड़का थाली उठाये उठाये आया। हँसमुख, नट-खट, बाइस-तेइस वर्ष की उम्र, स्वभाव में कुछ भोलापन।

आशनाई—अनजाने ही में सेंकरी के मस्तिष्क में एक शब्द गूँज गया।

और उसने ब्राह्मण-कुमार की ओर दबी निगाह से देखा, पर झट ही अपनी निगाहें फिरा लीं।

थाली के ऊपर से साफ़ा हटाकर लड़के ने कटोरियाँ निकालकर रख दीं।

वहीं बैठे-बैठे सेंकरी ने पूछा,—तेरी माँ क्यों नहीं आई आज?

"बीमार है जी", लड़के ने उत्तर दिया और फिर सेंकरी के पास आकर मुस्कराते हुए उसने कहा, "यह कंठी तो बड़ी सुन्दर है, कितने को आई है?"

सेंकरी ने कहा, "मालूम नहीं, पंडितजी लाये हैं—"

और तभी उसका मन हुआ कंठी पहन लें।

युवक ने कहा—पहनिए तो सही ठीक आ गई आपके? और यह कहकर वह ज़रा-सा हँस दिया।

सेंकरी ने तनिक आँख उठाकर उसकी ओर देखा। उसे उसकी यह हँसी बहुत सुन्दर लगी, साथ ही समस्त शरीर में एक झुरझुरी-सी दौड़ गई। "मैंने देखी तो नहीं"—और यह कहते हुए मुस्कुराकर और फिर कनखियों से ब्राह्मणकुमार की ओर देखकर सेंकरी कंठी पहनने लगी।

कंठी का हुक गले के पिछली ओर था। नया होने के कारण और गर्दन में कंठी के बिलकुल फिट आने के कारण वह प्रयास करने पर भी उसे न लगा सकी। तब ब्राह्मण-युवक ने सरल भाव से हँसते हुए आगे बढ़कर उसे लगा दिया। ऐसा करते समय उसकी अँगुलियां सेंकरी की कोमल गर्दन से छू गईं।

* दान-स्वरूप दिया जानेवाला भोजन।

सेंकरी के समस्त शरीर में फिर सनसनी-सी दौड़ गई।

हुक लगाकर सेंकरी की ओर मुग्ध दृष्टि से देखते हुए ब्राह्मणकुमार ने कहा, "बहुत सुन्दर लगती है यह आपको।"

तभी पंडितजी एक लटकती हुई जन्मपत्री हाथ में लिये दाख़िल हुए। आँखों में उनकी ख़ून उतर आया पर दूसरे क्षण बरबस मुस्कुराहट ओंठों पर लाकर उन्होंने कहा, "वाह कैसी सुन्दर लगती है !"

सेंकरी का मन प्रसन्न था। वह हँस दी और इसके बाद वह सारा दिन ख़ुश-ख़ुश रही और जब वह युवक हंदा लेकर चला गया तो अपने कमरे में जाकर किवाड़ बन्द करके उसने सब गहने-कपड़े पहने और वह कंठी भी अपने गले में लगाई, तभी उसने महसूस किया जैसे उस ब्राह्मणकुमार की अँगुलियाँ उसकी गर्दन को स्पर्श कर रही हैं और इस प्रतीति के साथ ही उसके शरीर की नस-नस में वैसी ही झुरझुरी दौड़ गई और फिर कुछ विचित्र कुसमुसाहट-सी होने लगी, और अज्ञात-सी आकांक्षा की आग, जो उसके हृदय में कहीं दबी पड़ी थी, फिर सुलग उठी।

रात सेंकरी के स्वप्नों की दुनिया आबाद रही थी। उस दुनिया का एक राजा भी था और एक रानी भी। राजा और रानी, जैसे आदि काल के बिछुड़े किसी नन्दन-कानन में आ मिले थे। रानी ने उपालम्भ-भरे स्वर में कहा था—तुम आते नहीं मेरे राजा और ये पहाड़-से दिन मुझसे काटे नहीं कटते और रातें...और यह कहते-कहते रानी की आँखें सजल हो गई थीं। तब मुस्कराते हुए राजा ने कहा था, तुम घबराओ नहीं रानी, इसी नन्दन-वन में हम-तुम रोज़ मिला करेंगे।

लेकिन दूसरे दिन जब सेंकरी का मन अन्य दिनों की अपेक्षा हल्का था, और सब गहने-कपड़े न सही, आसमानी रंग की साड़ी के साथ उसने अपने प्रिय कंगन और कर्णफूल, और चूड़ियाँ, और मोटे-मोटे सोने के मनकों की वह सुन्दर कंठी पहनी तो उसके सपनों का वह राजा न आया था।

परमेश्वरी ब्राह्मणी के स्थान पर हंदा लेने के लिए पंडितजी ने माया को लगा लिया था।

सारा दिन सेंकरी का शरीर शिथिल रहा था। अपने कमरे में वह अन्य-

मनस्क-सी लेटी रही और पहले से कहीं ज़्यादा उसे अपने मैके की, अपनी सहेलियों की याद सताने लगी थी। गली में पंडितजी ने उसका आना-जाना बन्द कर दिया था, मैके वह न जा-आ सकती थी, और हँसमुख परमेश्वरी के स्थान पर सूखी सड़ी माया थी और वह विह्वल हो उठी थी।

इसी तरह लेटे-लेटे करवटें बदलते बदलते दिन ढल गया। कमरे में जैसे उसका दम घुटने लगा। वह उठी। आँगन में आई। मुंडेर पर एक कौआ काँव-काँव कर रहा था और ताक के ऊपर आगे को बढ़ी हुई महराब पर, एक कबूतर पंख फुलाये, गर्दन झुकाये, अपनी प्रेयसी को मनाने की कोशिश कर रहा था, किन्तु जब वह मस्तानी चाल से चलता उसके पास जाता, वह उड़ जाती। एक ताक़ से दूसरे पर, दूसरे से तीसरे पर, तीसरे से खटोले पर, खटोले से चारपाई के पाये पर और फिर वहाँ से लड़की के जँगले पर कबूतरी जा जाकर बैठी, पर उसने पीछा न छोड़ा, तब झपकी मारकर जो वह उड़ी तो अनन्त-नील-आकाश की गहराइयों में विलीन हो गई। कुछ क्षण कबूतर ने वहीं जँगले पर एक-दो चक्कर लगाये, 'गटर गूँ, गटर गूँ', की और फिर वह भी उनपर आकाश की ओर उड़ गया।

लम्बी साँस भरकर सेंकरी ने अँगड़ाई ली, फिर उसने घड़े के ठंढे पानी से हाथ-मुँह धोये और फिर जैसे किसी अज्ञात प्रेरणा से ऊपर छत पर खुले में चली गई।

सामने मुहल्ले के परले सिरे, अपने पुराने मकान की छत पर परमेश्वरी ब्राह्मणी का लड़का, मौन, पुस्तक में ध्यान जमाये पढ़ रहा था। सेंकरी ने अनायास ही अपने बिखरे बालों पर हाथ फेरा। उसके मन में उमंग उठी, कुछ गाये, कुछ गुनगुनाये, कोई ढोलक का पुराना गीत, पर वह चुप अनि-मेष दृगों से उधर देखती रही। मुहल्ले का नीम ठंडी हवा के परस से जैसे मस्त होकर झूम रहा था। आकाश की गहराइयों में चीलें, एक दूसरी के पीछे उन्मत्त भाग रही थीं। सेंकरी ने अँगड़ाई-सी ली। तभी युवक ने उसकी ओर देखा। उसके सिर से सारी का छोर उड़ गया था और उसके बिल्लौर ऐसे गले में कंठी के बड़े-बड़े सुनहरी मनके डूबते हुए अंशुमाला की किरणों से जैसे शत-शत सूरज बनकर चमक रहे थे।

सेंकरी का मुख कानों तक सुर्ख़ हो गया। और युवक ने एक बिजली-सी अपने समस्त शरीर में दौड़ती हुई महसूस की।

तभी नीचे सीढ़ियों में पंडितजी के चप्पलों की फट-फट सुनाई दी। वह जल्दी से नीचे चली गई और मुस्कराते हुए उसने पंडितजी का स्वागत किया, यजमानों के घर से जो कुछ वे ले आये थे, उसके सम्बन्ध में एक-दो मज़ाक भी किये, पर जाने पंडितजी को उसके चेहरे पर क्या लिखा हुआ नज़र आया, कि सब कुछ जल्द जल्द उसे सम्हालकर वे बहाने से पहले छत पर गये और उन्होंने दूर सामने के मकान की छत पर पढ़ते हुए युवक को घूरकर देखा। तभी उसने भी सिर उठाया, दोनों की आँखें चार हुईं। पंडितजी ने अपनी चोटी पर हाथ फेरते हुए एक हुँकार भरी और जैसे निमिष मात्र के लिए हैरान-सा होकर युवक ने आँखें फिर पुस्तक में गाड़ लीं।

दूसरे दिन सेंकरी अभी बिस्तर से भी न उठी थी कि उसने देखा—सामने के मकान की ओर शहनशीन की जगह पूरा साढ़े पाँच फुट ऊँचा ईंटों का पर्दा बनाने का आयोजन राज-मज़दूर कर रहे हैं।

यह थी उस राज की वास्तविकता और सेंकरी को पता चल गया, कि इस राज के राजा और बन्दीखाने के जेलर में कोई अन्तर नहीं और अपने पति की ओर उसके मन में जो भय-सा था, वह एक तीव्र घृणा में परिवर्तित हो गया और दिन दिन इस घृणा की तह और भी गहरी होती गई और यह सब उस समय तक जारी रहा, जब तक इस घृणा और भय के बावजूद वह एक लड़की की माँ न हो गई और पुत्र की आकांक्षा मन ही में लिये हुए अपने ववाह के पूरे पाँच वर्ष बाद, नवजात कन्या के प्रथम जन्मदिवस को ज्योतिषीजी परलोक न सिधार गये।

× × ×

तब अपने इस वृद्ध जल्लाद-ऐसे पति की मृत्यु पर अपनी भावनाओं का भली भाँति विश्लेषण सेंकरी न कर पाई थी। उसका मन हलका भी था और एक बड़े बोझ तले दबा हुआ भी प्रतीत होता था। ज़ोर-ज़ोर से हँस पड़ने

को भी उसका जी चाहता था और ऊँचे-ऊँचे रो उठने को भी मन होता था। पर अधिक वह रोई ही थी। अपना एक-एक गहना उतारकर उसने ट्रंक में रखा, और फिर प्रथा के अनुसार पड़ोसिनों और दूर नज़दीक के रिश्तेदारों के साथ मिलकर उसने छाती भी पीटी, बाल भी नोचे और आँखें भी सुजा लीं।

माँ ने तब आकर उसे सान्त्वना दी थी कि बेटी विधाता का लेख तो अमिट है, उसकी आज्ञा के बिना एक तिनका तक नहीं हिल सकता। जिस हाल में वह रखे, उसी में रहना चाहिए और फिर माँ ने गाँव की कई लड़कियों की मिसालें देकर समझाया था कि गाँव में बारह-बारह वर्ष की उम्र में विधवा हो जानेवाली स्त्रियाँ बैठी हैं और अपने पति के नाम का अवलम्बन लेकर उन देवियों ने अपना सारे का सारा जीवन काट दिया है। यह तो फिर परमात्मा का शत शत धन्यवाद है कि ज्योतिषीजी दोनों दुकानें और मकान उसके नाम छोड़ गये हैं, नहीं उसे तो यही डर था, कि कहीं सौत और उसके रिश्तेदार ही सिर पर न सवार हो जायँ। इस तरह परमात्मा को धन्यवाद देकर माँ ने सेंकरी को सलाह दी थी कि बेटी अपने छोटे भाई को यहाँ बुलवा लेना। वह यहाँ नगर में रहकर पढ़ जायगा। ३० रुपया तो दुकानों का किराया ही आ जाता है, यह इतना बड़ा मकान भी क्या करना है, आधा किराये पर चढ़ा देना, और मन को धर्म-कर्म के कामों में लगाना। और फिर उसने यह भी प्रस्ताव किया था कि गहने सब जाते जाते वह स्वयं ले जायगी। यहाँ सौ चोर-चकार का डर रहता है, जब लड़की सयानी हो जायगी तो आ जायेंगे और फिर जैसे हवा में देखते हुए माँ ने कहा था—रामू का विवाह भी करना है, और घर की हालत तो तुमसे छिपी नहीं।

और सेंकरी ने जैसे बिना कुछ सुने ही यह सब स्वीकार कर लिया था।

× × ×

रात जब अपने मकान की खुली छत पर सेंकरी सोई, तो उसे नींद नहीं आई। साथ लगी बच्ची मुँह में स्तन लिये ही सो गई थी। सेंकरी ने उसे अलग किया और करवट बदली। ऊपर आकाश में पूर्णिमा का चाँद अपनी शुभ्र ज्योत्स्ना के साथ चमक रहा था। ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी। सेंकरी के हृदय से एक दीर्घ निःश्वास निकल गया। इन एक-दो वर्षों में जीवन को वह

कितना समझने लगी थी ? दायीं ओर एक ढीली-सी चारपाई पर गठरी-सी बनी हुई माँ पर उसकी दृष्टि गई और ग्लानि से उसका गला भर आया—यह विधाता की लेखनी है अथवा माँ-बाप का लेख ? माँ की याचना और पिता का प्रेम—सब व्यर्थ की बातें हैं, परिस्थितियों की झंझा का एक झोंका भी तो वह सह नहीं सकती, नहीं तो प्रतिदिन इतने माँ-बाप अपनी लड़कियों को इस प्रकार भट्टी में न झोंक देते। सँकरी को तब एक और बात याद हो आई जो एक दिन ज्योतिषीजी ने अपने कुल की कुलीनता का बखान करते हुए सुनाई थी। उन्होंने कहा था—पिछले वक्तों में कुलीन घरानों में तो लड़की पैदा होते ही उसका गला घोंट देते थे। वृद्धा दादियाँ, परदादियाँ और जहाँ वे न होतीं, वहाँ माताएँ लड़की पैदा होते ही उसका गला घोंट देती थीं और जहाँ माताएँ इस योग्य न होतीं वहाँ दाइयाँ ही यह काम बड़ी सुगमता से सरअंजाम देकर नवजात बालिका को पोटली में बाँधकर धरती में गाड़ आती थीं—नारी ही नारी पर कितने अत्याचार करती है?—उसने सोचा और वहाँ पड़े पड़े जैसे उसका दम घुटने लगा। एक सर्वग्राहिनी ज्वाला, जैसे उसके अन्तर में धू-धू करके जल उठी। उसकी माँ ने क्यों न जन्मते ही उसका गला घोट दिया ? और आँखों के भीजे हुए कोरों को आँचल से पोंछकर उसने करवट बदल ली ! मुहल्ले के नीम पर बैठा हुआ बरड़ो (छोटे उल्लुओं) का जोड़ा कर्कश स्वर में बिरड़-बिरड़कर उठा और ऊपर गगन में एक बड़ी-सी चमगादड़ अपने पैरों की छाया दीवार पर डालते हुए गुज़र गई।

सँकरी के सामने उसके सब गहने एक-एक करके आये—चौंक, फूल, क्लिप, काँटे, कंठी, माला, रानीहार, बाजूबन्द, कंगन, लच्छे, अनन्त,...... तो क्या वह इनमें से एक को भी अंग न लगा सकेगी ? क्या इन्हें अब उसकी भावजें पहनेंगी ? अपने इन प्रिय आभूषणों के लिए क्या वह एकदम अपरिचित हो जायगी ? और जैसे एक असह्य ईर्ष्या से उसका तन-मन जल उठा और एक बार अपने उन प्रिय आभूषणों को जी भर देख लेने की इच्छा उसके मन में प्रबल हो उठी। उसने इस इच्छा को दबाने का प्रयत्न भी किया; अपने वैधव्य का भी उसे ख़याल आया; विधवाओं के धर्म और समाज के प्रतिबंधों की बात भी उसने सोची पर उसकी वह इच्छा क्षण-प्रतिक्षण,

बलवती होती गई। आख़िर वह धीरे से उठी। उसने माँ की ओर दबी आँखों से देखा, दिन भर पीट-पीटकर थकी हुई वह ख़र्राटे ले रही थी। सेंकरी पंजों के बल चलती हुई अपने कमरे में पहुँची, अपने सब बहुमूल्य कपड़े उसने निकाल लिये, तभी नीचे से वह लाल साड़ी निकाली, जिसे उसने विवाह के दिन पहना था और एक अज्ञात प्रेरणा से उसने अपने कपड़े उतारकर उसे पहनना शुरू कर दिया। साड़ी पहनकर उसने अपने गहने निकाले। एक-एक करके उनको पहना। हाथों में कंगन पहनते समय उसे मालूम हुआ, वह कितनी कमज़ोर हो गई है और उसकी आँखों के सामने रक्त के इकट्ठा हो जाने से कलाई बनी हुई लाल-लाल चूड़ी फिर गई। वह शीशे के सामने गई। उसके गोल-गोल गालों पर गढ़े पड़ चले थे, जबड़ों की हड्डियाँ दिखाई देने लगी थीं और अभी उसकी उम्र सिर्फ़ अठारह वर्ष की थी।

दीर्घ निःश्वास लेकर वह वहीं ट्रंक पर बैठ गई और उसकी आँखों के सामने चार वर्ष पहले की एक घटना फिर गई, जब परमेश्वरी ब्राह्मणी के हँसमुख लड़के ने उसकी कंठी का हुक बाँध दिया था। उसी दिन की तरह एक अज्ञात आनन्द की झुरझुरी-सी उसके शरीर में दौड़ गई।

दूर कहीं मुसलमानों के मुहल्ले में मुर्ग़ ने अज़ाँ दीं। चौंककर सेंकरी उठी। सब गहने उतारकर उसने ट्रंक में बन्द किये, कपड़े तह लगाकर रखे और दबे पाँव ऊपर पहुँची। चाँद तब दायीं ओर के ऊँचे मकान की ओट में चला गया था और चारपाइयों पर हलका-सा अँधेरा छा गया था। चुपचाप सेंकरी अपनी चारपाई पर जा लेटी।

× × ×

दूसरे दिन जब माँ वापस जाने लगी और अन्दर ले जाकर उसने सेंकरी से गहने माँगे तो उसने टाल दिया।

डाची

'काट[1]पी-सिकन्दर' के मुसलमान जाट बाक़र को अपने माल की ओर लालस-भरी निगाहों से ताकते देखकर चौधरी नन्दू वृक्ष की छाँह में बैठे-बैठे अपनी ऊँची घरघराती आवाज़ में ललकार उठा—'रे-रे अठे के करे है? [2] और उसकी छः फुट लम्बी सुगठित देह, जो वृक्ष के तने के साथ आराम कर रही थी, तन गई और बटन टूटे होने के कारण मोटी खादी के कुर्ते से उसका विशाल वक्षस्थल और उसकी बलिष्ठ भुजाएँ दृष्टिगोचर हो उठीं।

बाक़र तनिक समीप आ गया। गर्द से भरी हुई छोटी नुकीली दाढ़ी और शरअई मूँछों के ऊपर गढ़ों में धँसी हुई दो आँखों में निमिष-मात्र के लिए चमक पैदा हुई और ज़रा मुस्कराकर उसने कहा—"डाची[3] देख रहा था चौधरी, कैसी ख़ूबसूरत और जवान है, देखकर भूक मिटती है।"

अपने माल की प्रशंसा सुनकर चौधरी नन्दू का तनाव कुछ कम हुआ; ख़ुश होकर बोला—"किसी साँड[4]?"

"वह—परली तरफ़ से चौथी।" बाक़र ने इशारा करते हुए कहा।

ओकाँह[5] के एक घने पेड़ की छाया में आठ-दस उँट बँधे थे, उन्हीं में वह जवान साँडनी अपनी लम्बी सुन्दर और सुडौल गर्दन बढ़ाये घने पत्तों में मुँह मार रही थी। माल मंडी में, दूर जहाँ तक नज़र जाती थी, बड़े-बड़े ऊँचे ऊँटों, सुन्दर साँडनियों, काली-मोटी बेडौल भैंसों, सुन्दर नगौरी सींगों-वाले बैलों और गायों के सिवा कुछ दिखाई न देता था। गधे भी थे; पर न होने के बराबर। अधिकांश तो ऊँट ही थे। बहावल नगर के मरुस्थल में

१—काट—दस बीस झुग्गियों का छोटा सा गाँव

२—अरे तू यहाँ क्या कर रहा है।

३—डाची—साडनी।

४—कौन-सी डाची?

५—एक वृक्ष-विशेष।

होनेवाली मालमंडी में उनका आधिक्य था भी स्वाभाविक। ऊँट रेगिस्तान का जानवर है; इस रेतीले इलाक़े में आमद-रफ़्त, खेती-वाड़ी और बारबरदारी का काम उसी से होता है। पुराने समय में जब गाएँ दस-दस और बैल पन्द्रह-पन्द्रह रुपये में मिल जाते थे, तब भी अच्छा ऊँट पचास से कम में हाथ न आता था और अब भी जब इस इलाके में नहर आ गई है, पानी की इतनी क़िल्लत नहीं रही, ऊँट का महत्त्व कम नहीं हुआ, बल्कि बढ़ा ही है। सवारी के ऊँट दो-दो सौ से तीन-तीन सौ तक पा जाते हैं और बाही तथा बारबरदारी के भी अस्सी-सौ से कम हाथ में नहीं आते।

तनिक और आगे बढ़कर बाक़र ने कहा—"सच कहता हूँ, चौधरी, इस जैसी सुन्दरी साँडनी मुझे सारी मण्डी में दिखाई नहीं दी।"

हर्ष से नन्दू का सीना दुगना हो गया, बोला—"आ एक ही के, इह तो सगली फूटरी हैं। हूँ तो इन्हें चारा फलूँसी नीरिया करूँ[1]।"

धीरे से बाक़र ने पूछा—"बेचोगे इसे?"

नन्दू ने कहा—"इठई बेचने लई तो लाया हूँ।"

"तो फिर बताओ, कितने को दोगे?"—बाक़र ने पूछा।

नन्दू ने नख से शिख तक बाक़र पर एक दृष्टि डाली और हँसते हुए बोला—"तन्ने चाही जै का तेरे धनी बेई मोल लेसी[2]?"

"मुझे चाहिए।"—बाक़र ने दृढ़ता से कहा।

नन्दू ने उपेक्षा से सिर हिलाया। इस मज़दूर की यह बिसात कि ऐसी सुन्दर साँडनी मोल ले, बोला—"तूँ की लेसी?"

बाक़र की जेब में पड़े हुए सौ के नोट जैसे बाहर उछल पड़ने के लिए व्यग्र हो उठे, तनिक जोश के साथ उसने कहा—"तुम्हें इससे क्या, कोई ले; तुम्हें तो अपनी क़ीमत से गरज़ है, तुम मोल बताओ?"

नन्दू ने उसके जीर्ण-शीर्ण कपड़ों, घुटनों से उठे हुए तहमद और जैसे नूह के वक्त से भी पुराने जूते को देखते हुए टालने की ग़रज़ से कहा—"जा-

---

१—यह एक ही क्या, यह तो सब ही सुन्दर हैं, मैं इन्हें चारा और फलूँसी (जवारे और मोंट) देता हूँ।

२—तुझे चाहिए, या तू अपने मालिक के लिए मोल ले रहा है?

जा, तू इशी-विशी ले आई, इंगो मोल तो आठ बीसी सूँ घाट के नहीं [१] ।"

एक निमिष के लिए बाक़र के थके हुए, व्यथित चेहरे पर आह्लाद की रेखा झलक उठी। उसे डर था कि चौधरी कहीं ऐसा मोल न बता दे, जो उसकी बिसात से ही बाहर हो; पर जब अपनी ज़बान से ही उसने १६०) बताये, उसकी ख़ुशी का ठिकाना न रहा। १५०) तो उसके पास थे ही। यदि इतने पर भी चौधरी न माना, तो दस रुपये वह उधार कर लेगा। भाव-ताव तो उसे करना आता न था, झट से उसने डेढ़ सौ के नोट निकाले और नन्दू के आगे फेंक दिये, बोला—"गिन लो, इनसे अधिक मेरे पास नहीं, अब आगे तुम्हारी मर्ज़ी।"

नन्दू ने अन्यमनस्कता से नोट गिनने आरम्भ कर दिये; पर गिनती ख़त्म करते ही आँखें चमक उठीं। उससे तो बाक़र को टालने के लिए ही मूल्य १६०) बता दिया था, नहीं मण्डी में अच्छी-से-अच्छी डाची भी डेढ़ सौ में मिल जाती और इसके तो १४०) पाने की भी कल्पना उसने स्वप्न में नहीं की थी; पर शीघ्र ही मन के भावों को छिपाकर और जैसे बाक़र पर अहसान का बोझ लादते हुए नन्दू बोला—"साँड तो मेरी दो सै की है, पण जा सग्गी मोल मियाँ तन्ने दस छाडियाँ [२]।" और यह कहते-कहते उठकर उसने साँडनी की रस्सी बाक़र के हाथ में दे दी।

क्षणभर के लिए उस कठोर व्यक्ति का जी भर आया। यह साँडनी उसके यहाँ ही पैदा हुई और पली थी, आज पाल-पोसकर उसे दूसरे के हाथ में सौंपते हुए उसके मन की कुछ ऐसी हालत हुई, जो लड़की की सुसराल भेजते समय पिता की होती है। ज़रा काँपती आवाज़ में, स्वर को तनिक नर्म करते हुए, उसने कहा—"आ साँड सोरी रहेड़ी है, तूँ इन्हें रेहड़ में न गेर दई [३]।" ऐसे ही, जैसे श्वसुर दामाद से कह रहा है—मेरी लड़की लाडो पली है, देखना इसे कष्ट न होने देना।

१—जा, जा, तू कोई ऐसी-वैसी साँड ख़रीद ले, इसका मूल्य तो १६०) से कम नहीं।

२—साँडनी तो मेरी २००) की है; पर जा सारी कीमत में से तुम्हें दस रुपये छोड़ दिये।

३—यह साँडनी अच्छी तरह रखी गई है, तू इसे यों ही मिट्टी में न रोल लेना।

आह्लाद के परों पर उड़ते लुए बाक़र ने कहा—"तुम ज़रा भी चिन्ता न करो, जान देकर पालूँगा।"

नन्दू ने नोट अंक में सँभालते हुए जैसे सूखे हुए गले को ज़रा तर करने के लिए घड़े में से मिट्टी का प्याला भरा—मण्डी में चारों ओर धूल उड़ रही थी। शहरों की माल मंडियों में भी—जहाँ बीसियों अस्थायी नलके लग जाते हैं और सारा-सारा दिन छिड़काव होता रहता है—धूल की कमी नहीं होती; फिर रेगिस्तान की मंडी पर तो धूल का ही साम्राज्य था। गन्नेवाले की गंडेरियों पर हलवाई के हलवे और जलेबियों पर और खोंचेवाले के दही-पकौड़ी पर, सब जगह धूल का पूर्णाधिकार था। घड़े का पानी टाँचियों द्वारा नहर से लाया गया था; पर यहाँ आते-आते वह कीचड़-जैसा गँदला हो गया था। नन्दू का ख़याल था कि निथरने पर पीयेगा; पर गला कुछ सूख रहा था। एक ही घूँट में प्याले को ख़त्म करके नन्दू ने बाक़र से भी पानी पीने के लिए कहा। बाक़र आया था, तो उसे गज़ब की प्यास लगी हुई थी; पर अब उसे पानी पीने की फ़ुर्सत कहाँ? वह रात होने से पहले-पहल गाँव पहुँचना चाहता था। डाची का रस्सी पकड़े हुए वह धूल को जैसे चीरता हुआ चल पड़ा।

× × × ×

बाक़र के दिल में बड़ी देर से एक सुन्दर और युवा डाची ख़रीदने की लालसा थी। जाति से वह कमीन था। उसके पूर्वज कुम्हारों का काम करते थे; किन्तु उसके पिता ने अपना पैत्रिक काम छोड़कर मज़दूरी करना ही शुरू कर दिया था, और उसके बाद बाक़र भी इसी से अपना और अपने छोटे-से कुटुम्ब का पेट पालता आ रहा था। वह काम अधिक करता हो, यह बात न थी; काम से उसने सदैव जी चुराया था, और चुराता भी क्यों न, जब उसकी पत्नी उससे दुगुना काम करके उसके भार को बँटाने और उसे आराम पहुँचाने के लिए मौजूद थी। कुटुम्ब बड़ा नहीं था—एक वह, एक उसकी पत्नी और एक नन्हीं-सी बच्ची; फिर किस लिए वह जी हलकान करता? पर क्रूर और बेपीर विधाता—उसने उसे उस विस्मृति से, सुख की उस नींद से जगाकर अपना उत्तरदायित्व महसूस करने पर बाधित कर दिया; उसे बता दिया

कि जीवन में सुख ही नहीं, आराम ही नहीं, दुख भी है, परिश्रम भी है।

पाँच वर्ष हुए उसकी वही आराम देनेवाली प्यारी पत्नी सुन्दर गुड़िया-सी लड़की को छोड़कर परलोक सिधार गई थी। मरते समय, अपनी सारी करुणा को फीकी और श्रीहीन आँखों में बटोरकर उसने बाक़र से कहा था—"मेरी रज़िया अब तुम्हारे हवाले है, इसे कष्ट न होने देना,—और इसी एक वाक्य ने बाक़र के समस्त जीवन के रुख़ को पलट दिया था। उसकी मृत्यु के बाद ही वह अपनी विधवा बहन को उसके गाँव से ले आया था और अपने आलस्य तथा प्रमाद को छोड़कर अपनी मृत पत्नी की अन्तिम अभिलाषा को पूरा करने में संलग्न हो गया था।

वह दिन-रात काम करता था, ताकि अपनी मृत पत्नी की उस धरोहर को, अपनी उस नन्हीं-सी गुड़िया को, भाँति भाँति की चीज़ें लाकर प्रसन्न रख सके। जब भी कभी वह मंडी को आता, तो नन्ही-सी रज़िया उसकी टाँगों से लिपट जाती और अपनी बड़ी-बड़ी आँखें उसके गर्द से अटे हुए चेहरे पर जमाकर पूछती—'अब्बा, मेरे लिए क्या लाये हो?' तो वह उसे अपनी गोद में ले लेता और कभी मिठाई और कभी खिलौनों से उसकी झोली भर देता। तब रज़िया उसकी गोद से उतर जाती और अपनी सहेलियों को अपने खिलौने या मिठाई दिखाने के लिए भाग जाती। यही गुड़िया जब आठ वर्ष की हुई, तो एक दिन मचलकर अपने अब्बा से कहने लगी—'अब्बा, हम तो डाची लेंगे ; अब्बा, हमें डाची ले दो।' भोली-भाली निरीह बालिका! उसे क्या मालूम कि वह एक विपन्न ग़रीब मज़दूर की बेटी है, जिसके लिए डाची ख़रीदना तो दूर रहा, डाची की कल्पना करना भी गुनाह है। रूखी हँसी हँसकर बाक़र ने उसे अपनी गोद में ले लिया और बोला—'रज्जो, तू तो खूद डाची है।' पर रज़िया न मानी। उस दिन मशीर माल अपनी साँडनी पर चढ़कर अपनी छोटी लड़की को अपने आगे बिठाये दो-चार मज़दूर लेने के लिए अपनी इसी काट में आये थे। तभी रज़िया के नन्हें-से मन में डाची पर सवार होने की प्रबल आकांक्षा पैदा हो उठी थी, और उसी दिन से बाक़र का रहा-सहा प्रमाद भी दूर हो गया था।

उसने रज़िया को टाल तो दिया था ; पर मन ही मन उसने प्रतिज्ञा कर

ली थी कि वह अवश्य रज़िया के लिए एक सुन्दर-सी डाची मोल लेगा। उसी इलाक़े में जहाँ उसकी आय की औसत साल-भर में तीन आने रोज़ाना भी न होती थी, अब आठ-दस आने हो गई। दूर-दूर के गाँवों में अब वह मज़दूरी करता। कटाई के दिनों में वह दिन-रात काम करता—फ़सल काटता, दाने निकालता, खलियानों में अनाज भरता, नीरा डालकर भूसे के कुप बनाता, बिजाई के दिनों में हल चलाता, पैलियाँ बनाता, बिजाई करता। इन दिनों में उसे पाँच आने से लेकर आठ आने रोज़ाना तक मज़दूरी मिल जाती। जब कोई काम न होता, तो प्रातः उठकर आठ कोस की मंज़िल मारकर मंडी जा पहुँचता और आठ-दस आने की मज़दूरी करके ही वापस लौटता। इन दिनों में वह रोज़ छै आने बचाता आ रहा था। इस नियम में उसने किसी तरह की ढील न होने दी थी। उसे जैसे उन्माद-सा हो गया था। बहन कहती—'बाक़र, अब तो तुम बिलकुल ही बदल गये हो, पहले तो तुमने कभी ऐसी जी तोड़कर मेहनत न की थी।'

बाक़र हँसता और कहता—'तुम चाहती हो, मैं आयु-भर निठल्ला रहूँ ?'

बहन कहती—'निकम्मा बैठने को तो मैं नहीं कहती ; पर सेहत गँवाकर धन एकत्रित करने की सलाह भी मैं नहीं दे सकती।'

ऐसे अवसर पर सदैव बाक़र के सामने उसकी मृत पत्नी का चित्र खिंच जाता, उसकी अन्तिम अभिलाषा उसके कानों में गूँज जाती। वह आँगन में खेलती हुई रज़िया पर एक स्नेह-भरी दृष्टि डालता और विषाद से मुस्कराकर फिर अपने काम में लग जाता। और आज—डेढ़ वर्षों की कड़ी मशक़्क़त के बाद वह अपनी चिर-संचित अभिलाषा को पूरी कर सका था। उसके एक हाथ में साँडनी की रस्सी थी और नहर के किनारे-किनारे वह चला जा रहा था।

शाम का वक़्त था। पश्चिम की ओर डूबते सूरज की किरणें धरती को सोने का अन्तिम दान कर रही थीं। वायु में ठंडक आ गई थी, और कहीं दूर खेतों में टटिहरी टीहूँ-टीहूँ करती उड़ रही थी। बाक़र के मन में अतीत की सब बातें एक-एक करके आ रही थीं। इधर-उधर कभी-कभी कोई किसान अपने ऊँट पर सवार जैसे फुदकता हुआ निकल जाता था और कभी-कभी

खेतों से वापस आनेवाले किसानों के लड़के छकड़े में रखे हुए घास-पट्ठे के गट्ठों पर बैठे, बैलों को पुचकारते, किसी गीत का एक-आध बन्द गाने, या छकड़े के पीछे बँधे हुए चुपचाप चले आनेवाले ऊँटों की थूथनियों से खेलते चले जाते थे।

बाक़र ने, जैसे स्वप्न से जागते हुए, पश्चिम की ओर अस्त होते हुए अंशुमाली की ओर देखा, फिर सामने की ओर शून्य में नज़र दौड़ाई। उसका गाँव अभी बड़ी दूर था। पीछे की ओर हर्ष से देखकर और मौन रूप से चली आनेवाली साँडनी को प्यार से पुचकारकर वह और भी तेज़ी से चलने लगा—कहीं उसके पहुँचने से पहले रज़िया सो न जाये, इसी विचार से।

× × ×

मशीर माल की काट नज़र आने लगी। यहाँ से उसका गाँव समीप ही था। यही कोई दो कोस। बाक़र की चाल धीमी हो गई और इसके साथ ही कल्पना की देवी अपनी रंग-बिरंगी तूलिका से उसके मस्तिष्क के चित्रपट पर तरह-तरह की तसवीरें बनाने लगी। बाक़र ने देखा, उसके घर पहुँचते ही नन्हीं रज़िया आह्लाद से नाचकर उसकी टाँगों से लिपट गई है और फिर डाची को देखकर उसकी बड़ी-बड़ी आँखें आश्चर्य और उल्लास से भर गई हैं। फिर उसने देखा, वह रज़िया को आगे बिठाये सरकारी खाले (नहर) के किनारे किनारे डाची पर भागा जा रहा है। शामका वक्त है, ठंडी-ठंडी हवा चल रही है और कभी-कभी कोई पहाड़ी कौवा अपने बड़े-बड़े परों को फैलाये और अपनी मोटी आवाज़ से दो-एक बार कावँ-कावँ करके ऊपर से उड़ता चला जाता है। रज़िया की ख़ुशी का वारपार नहीं। वह जैसे हवाई-जहाज़ में उड़ी जा रही है; फिर उसके सामने आया कि वह रज़िया को लिये बहावलनगर की मंडी में खड़ा है। नन्हीं रज़िया मानो भौंचक्की-सी है। हैरान और आश्चर्यान्वित-सी कई ओर अनाज के इन बड़े-बड़े ढेरों, अगिनत छकड़ों और हैरान कर देनेवाली चीज़ों को देख रही है। बाक़र साह्लाद उसे सबकी कैफीयत दे रहा है। एक दूकान पर ग्रामोफोन बजने लगता है। बाक़र रज़िया को वहाँ ले जाता है। लकड़ी के इस डिब्बे से किस तरह गाना निकल रहा है, कौन इसमें छिपा जा रहा है—यह सब बातें रज़िया की समझ में नहीं आतीं, और यह

सब जानने के लिए उसके मन में जो कुतूहल है, वह उसकी आँखों से टपक पड़ता है।

वह अपनी कल्पना में मस्त काट के पास से गुजरा जा रहा था कि अचानक कुछ ख़याल आ जाने से वह रुका और काट में दाखिल हुआ। मशीर माल की काट भी कोई बड़ा गाँव न था। इधर के सब गाँव ऐसे ही हैं। ज़्यादा हुए तो तीस छप्पर हो गये। कड़ियों की छत का या पक्की ईटों का मकान इस इलाके में अभी नहीं। खुद बाक़र की काट में पन्द्रह घर थे, घर क्या झुँगियाँ थीं। मशीर माल की काट भी ऐसी ही बीस-पचीस झुँगियों की बस्ती थी, केवल मशीर माल का निवास-स्थान कच्ची ईटों से बना था; पर छत उस पर की छप्पर की ही थी। नानक बढ़ई की झुँगी के सामने वह रुका। मंडी जाने से पहले यह यहाँ डाची का गदरा* (पलान) बनने के लिए दे गया था। उसे ख़याल आया कि यदि रज़िया ने साँड़नी पर चढ़ने की ज़िद की, तो वह उसे कैसे टाल सकेगा, इसी विचार से वह पीछे मुड़ आया था। उसने नानक को दो-एक आवाज़ें दीं। अन्दर से शायद उसकी पत्नी ने उत्तर दिया—'घर में नहीं हैं, मंडी गये हैं।'

बाक़र का दिल बैठ गया। वह क्या करे, यह न सोच सका। नानक यदि मंडी गया है, तो गदरा क्या ख़ाक बनाकर गया होगा; लेकिन फिर उसने सोचा, शायद बनाकर रख गया हो। इससे उसे कुछ सान्त्वना मिली। उसने फिर पूछा—'मैं साँडनी का पलान बनाने के लिए दे गया था, वह बना या नहीं?'

जवाब मिला—'हमें मालूम नहीं।'

बाक़र का आधा उल्लास जाता रहा, बिना गदरे के वह डाची को क्या लेकर जाये। नानक होता तो उसका गदरा चाहे न बना सही, कोई दूसरा ही उससे माँगकर ले जाता, इस ख़याल के आते ही उसने सोचा—'चलो मशीर माल से माँग लें, उनके तो इतने ऊँट रहते हैं, कोन-न-कोई पुराना पलान होगा ही, अभी उसी से काम चला लेंगे, तब तक नानक नया गदरा तैयार कर देगा। यह सोचकर वह मशीर माल के घर की ओर चल पड़ा।

---

* गदरा = ऊँट पर बैठने की गद्दी।

अपनी मुलाजमत के दिनों में मशीर माल साहब ने काफ़ी धन उपार्जन किया था। जब इधर नहर निकली, तो उन्होंने अपने असर और रसूख से रियासत की ज़मीन ही में कौड़ियों के मोल कई मुरब्बे ज़मीन ले ली थी। अब रिटायर होकर यहीं आ रहे थे। राहक* रखे हुए थे, आय ख़ूब थी और मज़े से जीवन व्यतीत हो रहा था। अपनी चौपाल में एक तख़्त-पोश पर बैठे वे हुक्का पी रहे थे—सिर पर श्वेत साफ़ा, गले में श्वेत कमीज़, उस पर श्वेत जाकेट और कमर में दूध जैसे रङ्ग का तहमद। गर्द से अटे हुए बाक़र को साँडनी की रस्सी पकड़े आते देखकर उन्होंने पूछा—'कहो बाक़र, किधर से आ रहे हो?'

बाक़र ने झुककर सलाम करते हुए कहा—'मंडी से आ रहा हूँ, मालिक!'

—'यह डाची किसकी है?'

—'मेरी ही है मालिक, अभी मंडी से ला रहा हूँ।'

—'कितने को लाये हो?'

बाक़र ने चाहा, कह दे आठ-बीसी को लाया हूँ। उसके ख़याल में ऐसी सुन्दर डाची २००) में भी सस्ती थी; पर मन न माना, बोला—'हजूर, माँगता तो १६०) था; पर सात बीसी ही में ले आया हूँ।'

मशीर माल ने एक नज़र डाची पर डाली। वे ख़ुद देर से एक सुन्दर सी डाची अपनी सवारी के लिए लेना चाहते थे। उनके डाची तो थी; पर पछले वर्ष उसे सीमक हो गया था और यद्यपि नील इत्यादि देने से उसका रोग तो दूर हो गया था; पर उसकी चाल में वह मस्ती, वह लचक न रही थी। यह डाची उनकी नज़रों में खुब गई। क्या सुन्दर और सुडौल अंग है, क्या सफेदी-मायल भूरा-भूरा रंग है, क्या लचलचाती लम्बी गर्दन है! बोले—'चलो, हम से आठ-बीसे ले लो, हमें एक डाची की ज़रूरत है, दस तुम्हारी मेहनत के रहे।'

बाक़र ने फीकी हँसी के साथ कहा—'हजूर, अभी तो मेरा चाव भी पूरा नहीं हुआ!'

---

* राहक = मुज़ारा।

मशीर माल उठकर डाची की गर्दन पर हाथ फेरने लगे थे—वाह ! क्या असील जानवर है। प्रकट बोले—'चलो पाँच और ले लेना।'

और उन्होंने आवाज़ दी—'नूरे, अरे ओ नूरे !'

नौकर भैंसों के लिए पट्ठे कतर रहा था, गड़ासा हाथ ही में लिये भाग आया। मशीर माल ने कहा—'यह डाची ले जाकर बाँध दो ! १६५) में, कहो कैसी है ?'

नूरे ने हतबुद्धि-से खड़े बाक़र के हाथ से रस्सी ले ली और नख से शिख तक एक नज़र डाची पर डालकर बोला—'खूब जानवर है', और यह कहकर नौहरे की ओर चल पड़ा।

तब मशीर माल ने अंटी से ६०) रुपए के नोट निकालकर बाक़र के हाथ में देते हुए मुसकराकर कहा—'अभी एक राहक देकर गया है, शायद तुम्हारी ही किसमत के थे, अभी यह रखो, बाक़ी भी एक-दो महीने तक पहुँचा दूँगा। हो सकता है, तुम्हारी किसमत के पहले ही आ जायें।' और बिना कोई जवाब सुने वे नौहरे की ओर चल पड़े। नूरा फिर चारा कतरने लगा था; दूर ही से आवाज़ देकर उन्होंने कहा—'भैंस का चारा रहने दो, पहले डाची के लिए गवारे का नीरा कर डाल, भूकी मालूम होती है।'

और पास जाकर साँडनी की गर्दन सहलाने लगे।

× × ×

कृष्णपक्ष का चाँद अभी उदय नहीं हुआ था। विजन में चारों ओर कुहासा-सा छा रहा था। सिर पर दो-एक तारे निकल आये थे और दूर बबूल और ओकाँह के वृक्ष बड़े-बड़े काले-सियाह धब्बे बन रहे थे। फोग की एक झाड़ी की ओट में अपनी काट के बाहर बाक़र बैठा उस क्षीण प्रकाश को देख रहा था, जो सरकंडों से छिन-छिनकर उसके आँगन से आ रहा था। जानता था रज़िया जागती होगी, उसकी प्रतीक्षा कर रही होगी। वह इस इन्तज़ार में था कि दिया बुझ जाय, रज़िया सो जाय तो वह चुपचाप अपने घर में दाख़िल हो।

चेतन की मा

चेतन की मा, उन पतिव्रता स्त्रियों में से थी, जिन्हें धर्मशास्त्रों, पंडितों और पुरोहितों ने भारत में पैदा कर दिया है। स्वर्ग पाने के लिए ही वे पति को परमेश्वर समझती हों, यह बात नहीं। बचपन ही से उन्हें बताया जाता है कि पति अंधा, काना, लूला, लँगड़ा, विपन्न, ग़रीब, शराबी, जुआरी कैसा भी क्यों न हो, पत्नी के लिए वह परमेश्वर है, उसकी अवज्ञा करना महापाप है, इसलिए पतिव्रत-धर्म उनके स्वभाव का एक अंग बन जाता है—चेतन की मा ऐसी ही स्त्रियों में से थी।

उसके पिता पं० शिवराम मिश्र होशयारपुर में पण्डिताई करते थे। उनकी पहली पत्नी चेतन की मा को छोड़कर तब ही मर गई थी, जब वह केवल तीन वर्ष की थी। घर से उसके पिता अत्यन्त विपन्न और ग़रीब थे और यजमान भी उनके इतने अधिक न थे, इसलिए दूसरी जगह उनका विवाह शीघ्र न हो सका था। बात तो कई जगह लगी, लेकिन हमारे इन प्राचीन मुहल्लों में, जहाँ जोड़नेवाले दो हैं, वहाँ तोड़नेवाले चार मौजूद हैं, इसलिए लगने को होकर भी कई बार टूट गई। अन्त को उसकी मा की मृत्यु के पूरे सात वर्ष बाद, जब उसके पिता एक दिन प्रकट किसी दूसरे की बारात में शामिल होने के लिए गये थे और उसके ताऊ ने उसके लिए कई तरह की चीज़ें ला देने का वादा भी किया था तो आश्चर्य-चकित बालिका ने देखा विवाह से मिलनेवाली मिठाई आदि की गठरी के स्थान पर वे स्वयं बहू को ही ले आये हैं।

उस समय उल्लास, ख़ुशी तथा कई दूसरी हैरान कर देनेवाली रस्मों और बधाइयों के मध्य उसकी बुआ ने उसके बार-बार पूछने पर कहा था, 'यह तेरी नई मा है।'

अपनी सगी मा के सम्बन्ध में लाजवती को (क्योंकि यही चेतन की मा का नाम था) कुछ अधिक ज्ञान न था। बहुत हल्का-सा, जैसे युगों पहले देखे स्वप्न का-सा, अपनी मा का चित्र उसकी आँखों में आया करता था—शायद

पिता के रूखे व्यवहार के कारण स्नेहविहीना लड़की की कल्पना ने उसकी माता का चित्र उसके मानसपट पर बना दिया था—उसे कुछ ऐसा आभास था जैसे उनके अँधेरे आँगन में, जहाँ नमी का सदैव राज्य रहता था और ऊपर से खुला रहने पर भी जहाँ प्रकाश कम ही आ पाता था एक खाट पर, मैली-सी, कहीं धर्मशान्ति अथवा शुद्धि में आई हुई रज़ाई में लिपटी हुई उसकी मा पड़ी है—पीला ज़र्द चेहरा, पिचके गाल, बन्द होती-सी आकांक्षा और खुमार-भरी आँखें और काँपता-सा हाथ जो उसने उसके सिर पर रखा था। ओंठ उसके सूखे थे और उसके सिर पर प्यार का हाथ रखते हुए इन्हीं सूखे ओठों से उसने कुछ कहा भी था। पर वह सब उसे याद नहीं—यह चित्र कई बार चेतन की मा ने देखा है। उसने यह भी देखा है कि जब उसकी मा ऐसे पड़ी है और उसके सिर पर हाथ रखे अस्फुट स्वर में कुछ कह रही है तो उस अँधेरे आँगन के साथ लगी धुएँ-भरी कोठरी में उसके ताऊ चाय आदि पीकर बैठे कभी न दम लेनेवाली अपनी गुड़गुड़ी लिये धीरे-धीरे उसे गुड़-गुड़ा रहे थे।

जब-जब कष्ट, उपेक्षा, निरादर, स्नेहभाव के कारण चेतन की मा विह्वल हुई है, अपनी मा की यही मूर्ति उसके सामने आती रही है, और उसके हृदय को शान्ति मिलती रही है।

लेकिन उसकी यह नयी मा तो उसकी समवयस्क ही थी, बहुत होगा दो-एक वर्ष बड़ी होगी। देहात की होने के कारण कुछ बड़ी-बड़ी लगती थी—चौड़े-चौड़े हाथ-पाँव, खुले-खुले बेडौल अंग, लम्बी-मोटी नाक, स्वस्थ शरीर और साँवला रंग ! सर्वथा असभ्य और गँवार थी—न उसे बाल बाँधने का शऊर था, न कपड़े पहनने की तमीज़ ! नाम था मालाँ (मालिन का संक्षिप्त) और वह प्रयत्न करने पर भी इस नाम के अतिरिक्त, 'मा' या 'भाभी' या 'बीबी' कहकर उसे न बुला सकी थी।

दबे-दबे, घुटे-घुटे मा-बाप के स्नेह से वंचित बच्चों की बुद्धि या तो बिल्कुल जड़ हो जाती है, या फिर उसमें एक असाधारण प्रखरता आ जाती है। बच-पन में चेतन की मा की बुद्धि भी तीक्ष्ण थी, अल्पवयस ही में वह बहुत कुछ समझने-सोचने लगी थी। उसकी सहेलियाँ साथ के मुहल्ले की पाठशाला में

जाती थीं। पर उसे स्कूल जाने की मनाही थी। आज कल की भाँति शिक्षा आम न हुई थी और पुराने विचारों के उसके पिता और ताऊ इतनी बड़ी लड़की का घर से बाहर निकलना बुरा ख़याल करते थे। लेकिन चेतन की मा ने अपनी सहेलियों की पुस्तकों ही से उनके पढ़े हुए पाठ पूछ-पूछकर बहुत कुछ सीख लिया था। यहाँ तक कि एक दिन उसने जगदीश के सारे क़िस्से लेकर पढ़ डाले।

जगदीश उसके फूफा का लड़का था। वहीं रहा करता था। पढ़ता-पढ़ाता तो कुछ न था, पर क़िस्सा जो भी नया छपता खरीदकर घर ले आता। इन्हीं किस्सों में से एक पं० शिवराम ने अपनी लड़की के हाथ में देख लिया। तब ढूँढ़-ढूँढ़कर सब किस्सों को तो उन्होंने आग लगा दी, और साथ ही लड़के को भी उसके पिता के घर भेज दिया, और चेतन की मा को इतना फटकारा कि वह रो दी थी। उन किस्सों में क्या बुराई है, यह तब सरल, निरीह, भोली-भाली बालिका को मालूम न था।

अपने लड़के का यह अपमान देखकर बुआ ने पहले तो ताने दिये कि अब जब नई बहू आ गई है तो उसकी क्या ज़रूरत है, फिर अभिशाप दिये कि इस गँवार बहू के हाथों उसका घर चौपट हो जायगा, फिर रोई और फिर अपने घर चली गई।

तब पढ़ाई को छोड़कर चेतन की मा ने अपना ध्यान सीने-पिरोने और कशीदे की ओर लगाया था। और अपनी सहेलियों ही से पूछ-पूछकर उसने बहुत कुछ सीख लिया था। यह बुद्धि और यह सब सुघड़ापा उसने अपनी इस समवयस्क विमाता को सुसंस्कृत बनाने में ख़र्च करना शुरू कर दिया था। उसके बाल वही गूँथती, उसे कपड़े वही पहनाती; उसे सीना-पिरोना वही सिखाती और इस तरह अपने आपको योग्य बनाने का प्रयास करती। लेकिन न पिता ने इस काम के लिए उसकी प्रशंसा की थी और न माता बनकर आनेवाली इस समवस्यक लड़की ने। पिता कठोर थे और इस माता को प्रशंसा करने की तमीज़ ही न थी।

लेकिन चेतन की मा इतने ही से प्रसन्न थी कि एक दिन पण्डित शादी-राम से उसका विवाह हो गया।

यह ठीक है कि विवाह के तत्काल बाद ही वह ससुराल नहीं गई, और पुरानी प्रथा के अनुसार तीन वर्ष और अपने मायके में रही, किन्तु इन तीन वर्षों में, लड़की से वधू बन जाने पर भी, उसके दैनिक जीवन में कोई अन्तर नहीं आया। हुआ केवल इतना कि घर में उसका जो थोड़ा-बहुत मान था, वह भी कम हो गया।

बात यह हुई कि उसके चचा का विवाह भी इस बीच में हो गया—अमृतसर—और उसकी चतुर चची ने आते ही उसकी विमाता को अपने वश में कर लिया। इसलिए जब तीन वर्ष बाद एक दिन अचानक पं० शादीराम उसे लेने पहुँचे, तो उसे दुःख नहीं हुआ। उसकी आँखें भर आई थीं, और चलते समय वह रोई भी ख़ूब थी, पर यह रोना उस ख़ुशी के लिए न था जो मायके में लड़कियों को प्राप्त होती है, बल्कि उस ख़ुशी के अभाव के लिए था।

तभी जब वह ताँगे में बैठी थी और पिता ने ठंडे प्यार का हाथ उसके सिर पर फेरा था, तो चेतन की मा के सामने सीलदार आँगन के अँधेरे में पड़ी उस अपनी रुग्णा मा का चित्र घूम गया और उसने दुपट्टे से मुँह ढाँप लिया।

× × ×

जिस मकान में लाकर पं० शादीराम ने उसे ठहराया वह उनका अपना मकान न था। सहज ज्ञान ही से चेतन की मा ने इस बात को समझ लिया। क्योंकि मायके में अपनी ससुराल के पुराने जीर्ण-जीर्ण घर के सम्बन्ध में कुछ भनक उसके कान में पड़ चुकी थी और मन ही मन में उसने फैसला भी कर लिया था कि, बुरा तो भला तो, जो भी है, उसे ही वह स्वर्ग समझेगी। इसलिए उसने अपने पति से इच्छा प्रकट की थी कि जो भी हो, वह अपने ही घर जायगी। जब सदैव दूसरे के घर नहीं रहा जा सकता, और एक दिन अपने घर जाना ही है, तो क्यों न अभी से वहाँ रहने का अभ्यास डाला जाय।

और जब जीर्ण-शीर्ण ड्योढ़ी से गुज़रकर (पैरों की आहट ही से जिसकी छत और दीवारों की मिट्टी गिरती थी) वह आँगन में गई तो कुछ क्षण वह मूक मर्माहत-सी खड़ी रही थी। मायके में उसके पिता का घर भी पुराना ही था, अँधेरा भी था और सील भरा भी और सुन्दर भी वह कभी न था। लेकिन वह घर तो था। यह—यह तो खण्डहर था।

आँगन कूड़े-करकट से अटा पड़ा था। कुछ तो कोयले पड़े थे, और कहीं-कहीं कौवों तथा चीलों द्वारा आकाश से फेंकी हुई हड्डियाँ भी। सामने के दालान की दीवार में छोटी-छोटी ईंटें साफ़ दिखाई दे रही थीं (मिट्टी शायद वर्षा के कारण उतर गई थी)। रसोईघर के किवाड़े जर्जर थे और कुण्डी लगी रहने पर भी दोनों किवाड़ों के बीच इतनी जगह बन जाती थी कि पूरी की पूरी बाँह अन्दर बड़ी सुगमता से जा सकती थी। चूहे तो ख़ैर, बिल्ली भी चाहे तो तनिक सिकुड़कर घुस सकती थी। इसी दरवाज़े से निकलकर धुएँ ने रसोई-घर के बाहर की दीवार को बिलकुल काला कर दिया था। बाईं ओर का दालान जला पड़ा था और गिरी हुई छत का मलबा और कोयले दरवाज़े से बाहर तक आ गये थे। इसके साथ ही ड्योढ़ी की ओर को एक बिना किवाड़ों की खुली रसोई और थी। आँगन की मुँडेर निरन्तर वर्षा और लिपाई-पुताई के अभाव के कारण नंगी हो गई थी, और सामने दालान की मुँडेर पर एक बिलकुल नंग-धड़ंग व्यक्ति एक टाँग इधर और एक टाँग उधर किये बैठा शून्य ही से बातें कर रहा था। हाथों को एक दूसरे के पास लाकर उनसे शून्य में आदमी बनाता हुआ दाँत किटकटाकर 'लोहे का आदमी लकड़ी का आदमी—जा'—कहता हुआ वह उनमें बने हुए आदमियों को न जाने किधर उड़ा रहा था।

क्षण-भर के लिए चेतन की मा उस मिट्टी से सने, जैसे वर्षों से स्नान से वंचित व्यक्ति को देखती रही और उसने पति के यह शब्द—'चूनी है पागल'—भी नहीं सुने लेकिन तभी उस पागल ने उनकी ओर देखा, और दाँत किटकिटा-कर लोहे तथा लकड़ी के दो आदमी बनाकर उनकी ओर छोड़ दिये—चौड़ा मस्तक, चपटी मोटी नाक, ओंठ कटे होने के कारण बाहर दिखाई देते दाँत, खड़े-खड़े रूखे बाल, काली नंगी स्वस्थ देह—डरकर चेतन की मा दो कदम पीछे हट गई।

तब उसके पति ने छत पर जाकर उस पागल को भगा दिया और आकर तनिक उल्लास से बताया कि वह उनका पागल चचा है और यह जला दालान और खुली रसोई भी उसी की है, और उसी ने पागलपने की झोंक में इस दालान को आग लगा दी थी। और फिर कुछ गर्व के साथ उसके पति ने कहा था :—

'बस डरता है तो मुझ ही से। यह नाक इसकी मैंने ही तोड़ी है। एक दिन यह घर से जाता न था, दादी को तंग करता था, मैंने जाने को कहा तो मुझ पर भी झपटा, पटककर मैंने इसे उस किवाड़ की चौखट पर दे मारा। मेरा बाँया हाथ इसके हाथ में आ गया, बस किचकिचाकर दाँतों में इसने पकड़ लिया। मैंने कहा—'छोड़।' इसने और भी दाँत गड़ा दिये। तब पूरे ज़ोर से तानकर दो घूँसे मैंने इसके रसीद किये। नाक की कोठी टूट गई और ओंठ फट गये। दादी को सबसे अधिक इसी पागल से प्यार है, वह बहुत रोई-पीटी, पर यह फिर मेरे सामने नहीं हुआ।'

और यह कहकर प्रशंसा पाने की इच्छा से पं० शादीराम ने अपनी इस नवपरिणीता पत्नी की ओर देखा। लेकिन चेतन की मा का चेहरा ज़र्द पड़ गया और वह सहमी हुई-सी अपने इस क्रूर पति को देख रही थी।

तब कुछ अप्रतिभ-से होकर पं० शादीराम ने कन्धे झाड़े थे, और चारों ओर निगाह दौड़ाकर कहा था, 'मैंने तुम्हें बताया था न कि घर तो बस खण्डहर ही है।'

और वे खिसियानी-सी हँसी हँसे थे।

चेतन की मा के चेहरे का रंग वापस आ गया था, और अपना निश्चय भी उसे स्मरण हो आया था—'मेरे लिए यही स्वर्ग है'—यह कहकर वह आगे बढ़ी थी।

और फिर कपड़े बदलकर, आँगन को झाड़-बुहार कोयलों, हड्डियों और कूड़े-करकट का अम्बार उसने एक कोने में लगा दिया था, और दालान में भी सफ़ाई करके एक चारपाई के लिए थोड़ी-सी जगह बना ली थी।

× × ×

यहीं उसकी सुहागरात बसर हुई थी।

× × ×

और उसके बाद अब तक उसके दिन कैसे बीते थे? इस प्रश्न के उत्तर में केवल इतना कहना पर्य्याप्त है कि पहले दिनों से वे कुछ भिन्न न थे! और पहले दिनों का विवरण कुछ यों है:—

आठवीं श्रेणी में ही शराब पीना शुरू करके उसके पति ने अपने विवाह

तक सब तरह के काम कर देखे थे। और उन लोगों में, जो स्वयं इतने-शुद्ध चरित्र नहीं होते, दूसरों के चरित्र के प्रति जो एक तरह का सन्देह-सा होता है, वह पं० शादीराम के मन में भी था। दसवीं श्रेणी तक वे पढ़े थे (वास्तव में उन दिनों बी० ए० तक कोई बिरला ही युवक जाता था)। साहित्य के नाम पर भी (अपने समय के अधिक युवकों की भाँति) उन्होंने 'अलिफ़ लैला' 'क़िस्सा तोता-मैना', 'असरारे दरबारे हरामपुर' के ढङ्ग के उपन्यास पढ़े थे जिनमें तिरिया चरित्र के विशद वर्णन और काम को उद्दीप्त करनेवाले क़िस्सों के सिवा कुछ न था, इसलिए नारी के प्रति उनका सन्देह और भी गहरा था। चेतन की परदादी उन दिनों यजमानों के यहाँ दौरे पर गई हुई थीं, और स्वयं उन्हें स्कूल जाना होता (जहाँ मैट्रिक की परीक्षा पास करते ही वे अध्यापक हो गये थे), इसलिए वे उसे उसी खण्डहर में बन्द करके बाहर से ताला लगा दिया करते थे।

उस खण्डहर-से मकान में उसका दिन कैसे कटता था, इसके सम्बन्ध में जिज्ञासु को इतना बता देना यथेष्ट है कि वह किसी भारी बेचैनी अथवा उद्विग्नता से न गुज़रता था। अपने पति के इस क्रूर व्यवहार के प्रति भी उसके मन में किसी प्रकार का असन्तोष न था। अपने कर्मफल को (क्योंकि वह इस जन्म के दुःखों तथा कष्टों को पूर्व जन्म के कर्मों ही का फल समझती थी) उसने सन्तोष के साथ झेलना बहुत पहले सीख लिया था। अपनी ददिया सास (परदादी गंगादेई) के हाथों दालान के एक कोने में जमाई हुई चक्की को उसने अपने इस एकान्त की साथिन बनाया था। सुबह खाना बनाकर अपने पति को खिला-पिलाकर, उन्हें भेजकर (बाहर से उनके ताला लगा देने के बावजूद) अन्दर से कुण्डी लगाकर, वह चक्की के पास आ बैठती और दूसरे दिन के लिए आटा पीसती। कभी बायें कभी दाँयें और कभी दोनों हाथों से चक्की के दस्त को घुमाते हुए वह मीठे, तरल, लगभग आर्द्र स्वर से गाया भी करती थी। मायके में अपने उसी फूफा के लड़के से उसने एक बार ब्रह्मानन्द के बिसुन पदों की पुस्तक मँगाई थी। बार-बार उसे पढ़ने से बहुत-से भजन उसे कण्ठस्थ हो गये थे। उन्हें गाते-गाते वह भक्ति-रस में विभोर हो जाती और भूल जाती कि वह एकाकिनी है, उसके पति बाहर से ताला

लगा गये हैं, उसका घर खण्डहर है, उसका वर्तमान दुःखद है, और भविष्य भी उज्ज्वल नहीं—एक अनिर्वचनीय सन्तोष से उसके मन, प्राण प्लावित हो जाते थे। ब्रह्मानन्द के भजनों के अतिरिक्त वह दूसरे भी भजन गाती थी। जैसे :—

कहो जी कैसे तारोंगे?
रंका तारी बंका तारी तार्‌यो सदन कसाई
सुआ पढ़ावत गनिका तारी, तारी मीराबाई,
प्रभुजी कैसे तारोंगे।

भजन गाते-गाते वह तन्मय हो जाती, और प्रायः उसका स्वर भी सानुनासिक हो जाता (जैसे तारोगे को तारोंगे) किन्तु यह उस आदर का सूचक होता, जिससे वह सर्वशक्तिमान् को सम्बोधित करती।

कर्म गति टारे नाहिं टरै।

दूसरा गीत था जो वह चक्की पर गाया करती थी।

चक्की के बाद प्रायः वह चर्खा ले बैठती, और अपने समस्त एकान्त को, अभाव को, दुःख को जैसे वह कात-कातकर टोकरी में बन्द कर देती। 'हीररांँझा' का 'माही' अथवा 'ढोल' का कोई गीत गाने के बदले चर्खा कातते समय भी वह ऐसे ही गीत गाती। जैसे :—

हरी जी, जो गुज़रे सहिए
छोड़ खुदी की राह राजाजी
जो गुज़रे सहिए।

अपनी सहेलियों से पूछ-पूछकर उसने जो थोड़ा-बहुत पढ़ना सीख लिया था, इस एकान्त में वह भी उसके कम काम नहीं आया। अभी जब घर में रूई अथवा लोगड़* कुछ भी न होता तो वह भगवद्‌गीता ले बैठती। उसके दर्शन को वह ठीक तरह समझ पाती हो, यह बात नहीं, उन श्लोकों को वह ठीक तरह पढ़ पाती हो, यह भी नहीं; वह तो पाठ के तौर पर उसे पढ़ा करती। इस पुस्तक के श्लोक तोते के मुँह से सुनने पर जब गणिका जैसी

* नामा, रुइड़

वेश्या तर गई तो वह 'पापिन' क्यों न तर जायगी (उसने सत्य ही कोई पाप किया हो, यह बात नहीं, उसने सीखा था कि न जाने दिन में मनुष्य से कितने पाप बन आते हैं, इसलिए जहाँ तक हो डरकर रहना चाहिए ।)

इसी तरह उसका दिन बीत जाता था और कभी वह खाना पका रही होती कि पं० शादीराम आ जाते, और कभी खाना पक चुका होता, तब वह आते । उनका समय पर आ जाना कुछ निश्चित न था । उसके इस आरम्भिक जीवन में (और बदली हुई पार्श्व-भूमि के साथ बाद में भी) ऐसे बहुत से दिन आये, जब वह खाना पकाकर अपने पति की प्रतीक्षा में भूखी-प्यासी बैठी रही और वे रात-रात भर नहीं आये ।

अभी उसे इस क़ैदख़ाने में बन्दी हुए अधिक दिन नहीं बीते थे कि संकट चौथ का व्रत आ गया । चेतन क मा के लिए यह बड़ा महत्त्व-पूर्ण व्रत था । जब सन्धा को आकर पं० शादीराम ने किवाड़ खोले, तो दिन भर की भूखी-प्यासी लाजवती ने अपने पति से कहा कि वह व्रत से है और वे तिल और गुड़ ला दे ताकि वह भुग्गा बनाकर श्रीगणेश की पूजा करके व्रत उपार ले, और फिर उसने यह भी प्रार्थना की कि सन्ध्या को कम से कम आज वे कहीं न जाँय ।

पं० शादीराम ने उसे विश्वास दिलाया कि वे ऐसा ही करेंगे, और जल्दी ही आने का वादा करके प्रकट उसके लिए तिल लेने चले गये ।

लाजवती ने उनके लिए खाना आदि पका लिया और फिर वह वहीं रसोई के आँगन में बैठी उनकी प्रतीक्षा करने लगी । धीरे-धीरे सन्ध्या का अँधेरा आँगन में छा गया । सामने के मकान की ऊँची और निरन्तर वर्षा के कारण काली पड़ जानेवाली दीवार सन्ध्या के अँधेरे में और भी काली पड़ गई । और उस दीवार पर बनी छत पर लगी हुई कौवों की सभा भी विसर्जित हो गई । ऊपर निर्मल आकाश पर एक-दो तारे निकल आये । लाजवती ने उठकर सरसों का दिया जलाया और उसे रसोई में रखकर नमस्कार किया । फिर वह मोढ़े पर प्रतीक्षा में बैठ गई ।

वहीं बैठे-बैठे तब उसने संकटमोचन, दुःखहरन श्रीगणेश की आराधना आरम्भ कर दी और अगणित बार :

जय गनेश जय जनेश जय गनेश देवा

का पाठ भी कर लिया, और जब फिर भी पण्डितजी न आये, तब वह मन ही मन उस कहानी को दुहराने लगी जो संकटचौथ के दिन ब्राह्मणी सुनाया करती थी। यहाँ ब्राह्मणी तो क्या आती ; मन ही मन स्वयं उसने वह कहानी* दुहराई।

मन ही मन में इस कहानी को दुहराते हुए अन्त पर पहुँचकर चेतन की मा ने श्रद्धा से गणेश भगवान् का ध्यान कर सिर झुकाया, और एकचित्त होकर प्रार्थना की कि उसके समस्त संकट दूर हो जाएँ।

वहीं बैठे-बैठे उसने इस व्रत के माहात्म्य के सम्बन्ध में भी सब कहानियाँ मन में दुहरा डालीं, किन्तु पं० शादीराम न आये। उधर अर्घ्य का समय हो गया। अब घर में स्वच्छ पवित्र जल नहीं, जिससे चाँद को अर्घ्य दिया जाये। डरते-डरते वह ड्योढ़ी में गई कि दरवाज़े में खड़ी होकर सामने के मकान में

* एक बार भगवती पार्वती नहाने गई। भगवान् शिव कहीं बाहर गये थे, तब देवी पार्वती ने अपने पुत्र को स्नान-गृह के दरवाज़े पर खड़ा किया और कहा कि किसी को आने न देना। तब ऐसा हुआ कि भगवान् शिव बाहर से आये। पुत्र ने पिता को रोक दिया। भगवान् ने समझाया कि बेटा मै तेरा पिता हूँ, तेरी माता का पति हूँ। मेरे जाने से कुछ हानि नहीं। पति-पत्नी में कोई पर्दा नहीं होता, आदि आदि, पर पुत्र न माना। इस पर भगवान् शिव ने क्रोध में आकर उसका सिर तन से अलग कर दिया। जब देवी पार्वती बाहर आईं और अपने प्रिय पुत्र को मृत देखकर विलाप करने लगीं। उन्हें इस तरह कातर होते देख भगवान् शिव को उन पर दया आई, और उन्होंने वादा किया कि अच्छा इसे हम जीवित कर देंगे। पार्वती को यों ढाढ़स बँधा भगवान् ने अनुचरों को आज्ञा दी कि रात के समय जिस पुत्र की ओर माता पीठ करके सोई हुई हो, उसका सिर काट लें। अनुचर समस्त मर्त्यलोग में घूमे। पर कोई भी ऐसी माता न मिली जो अपने पुत्र की ओर पीठ करके लेटी हो। अन्त में उन्हें एक हस्तिनी ऐसी मिली जिसकी पीठ अपने शिशु की ओर थी। अनुचर उसके बच्चे का सिर काट लाये। भगवान् शिव ने अपने मृत पुत्र के धड़ पर वह सिर लगाकर मन्त्र पढ़ा और कहा कि 'जीव !' इस पर उसमें जान पड़ गई।

पार्वतीजी ने इस लम्बी सूँड़वाले गजानन को देखा तो वह और भी दुःखी हुईं। तब फिर भगवान् शिव ने उन्हें सान्त्वना दी और वर दिया कि जो इस दिन गणेश-पूजा करेगा, उसके सब संकट दूर हो जायेंगे।

रहनेवाली ब्राह्मणी मलावी को आवाज़ दे। अन्दर से कुण्डी खोलकर वह दरवाज़े से सिर लगाये कितनी देर तक खड़ी रही, किन्तु उसे आवाज़ देने का साहस न हुआ। आखिर उसने सिर हटाया, किवाड़ अन्दर को खुल गया। चूँकि पण्डितजी का ख़याल था कि वे शीघ्र आ जायँगे, इसलिए वे ताला लगाकर न गये थे।

सामने के मकान का दरवाज़ा बन्द था। मुहल्ले के सिरे पर म्यूनिसिपैल्टी का जो लैम्प जलता था, उसका प्रकाश उनके दरवाज़े तक न पहुँचता था। उस अन्धेरे में खड़े-खड़े उसने कई स्त्रियों को आते-जाते देखा, पर जान-पहचान न होने के कारण वह किसी को बुलाने का साहस न कर सकी सूखे ओंठ, शुष्क कण्ठ और शिथिल शरीर लिये वह वहीं खड़ी रही, तभी मलावी अपने घर आई और किवाड़ खोलकर उसने दिया जलाया तो उसने 'बहू' को अपने घर की चौखट से लगी खड़ी देखा। पास आकर उसने कहा :—

'सन्ते की बहू है ? क्या बात है बची ? तू ऐसे क्यों खड़ी है ?'

चेतन की मा पहले कुछ न कह सकी थी। पुनः पूछने पर अवरुद्ध कण्ठ से उसने कहा कि उसे कुछ जल चाहिए ताकि वह व्रत उपार सके।

मलावी ने उसे 'सहर्ष' पानी ला दिया था और यह भी बता दिया था कि वह (पं० शादीराम) तो देशराज के यहाँ गुट्ट पड़ा है। उसके आने की बाट वह कब तक जोहेगी और अपनी ओर से यह प्रस्ताव भी उसने दिया था कि यदि भुग्गा* नहीं बनाया, तो वह बाज़ार से उसे दूध ही ला देती है। पर चेतन की मा का मन ऐसा खिन्न था कि चाँद को अर्घ्य देकर पानी के दो घूँट भरकर ही उसने व्रत उपार लिया ; मलावी को बिदा दी और ड्योढ़ी का दरवाज़ा लगाकर रसोई में आ बैठी, और समय काटने के लिए उसने संकटमोचन दुःख हरण कुम्भोदर भगवान् गजानन का जाप आरम्भ कर दिया।

जै गनेश जै गनेश जै गनेश देवा।

और न जाने कब वहीं बैठे-बैठे जाप करते-करते उसे ऊँघ आ गई थी।

* गज़क की तरह की मठाई।

आधी रात के लगभग पं० सादीराम ने नशे में चूर थर-थराती आवाज़ में पुकारा था—दरवाज़ा !

और जब चौंककर चेतन की मा ने लपककर दरवाज़ा खोला था और उनके अन्दर आने पर बन्द कर दिया था तो उसे बगल में लिये वे नशे से लड़खड़ाते अन्दर अँधेरे दालान में आये थे। सरसों के तेल का एक दिया ताक में पड़ा टिमटिमा रहा था। और कच्ची मिट्टी और नमी की बू-सी आ रही थी। उसी दिये के प्रकाश में जब उसने अपने पति की आँखों में वासना और मद की झलक देखी तो उपवास, भूख और उनींदे से थकी उसकी आत्मा काँप उठी थी।

× × ×

लेकिन दूसरी सुबह जब उसने गिले के स्वर में पण्डितजी से कहा कि वे उसे अकेली छोड़कर तिल लेने का बहाना करके चले गये, और वह बैठी प्रतीक्षा करती रही और उसने बताया कि किस तरह उसे मलावी की सहायता लेनी पड़ी—तो वह बात पूरी भी न कर पाई थी कि उसके पति ने सहसा उसके मुँह पर एक थप्पड़ जमा दिया था। ऐसी गालियाँ देते हुए जो उसने पहली बार ही सुनी थीं, उसे डाँटा कि यदि वह एक दिन भूखी रह लेती तो मर न जाती ; उनके आने की प्रतीक्षा उसने क्यों न की और क्यों उसने मलावी को बुलाया। तब चेतन की मा ने अपने पति के पाँवों पर झुककर क्षमा माँग ली थी।

लेकिन उसके इस अपराध का दंड यहीं समाप्त न हो गया था। परदादी गंगादेई जब आई और उसे मालूम हुआ कि उसकी अनुपस्थिति में मलावी उसके घर आई थी तो बहू को दिनभर डाँटने-डपटने के बाद उसने मलावी और उसके घरवालों की सात पुश्तों का नाम लेकर 'मधुर वचनों' की वर्षा की थी—और सहमी हुई बहू ने देखा था कि उसकी ददेस (सास की सास) जब नहाने लगती है तो मलावी और उसके मृत पति का नाम लेकर दुराशीशें देती है (क्योंकि चेतन की परदादी गंगादेई का ख़याल था कि नहाते समय की दुराशीश ऐन निशाने पर बैठती है।)

अपनी ददेस से चेतन की मा की यही पहली भेंट थी।

× × ×

बाद के इन लम्बे तीस वर्षों में पहले परदादी गंगादेई और फिर चेतन के पिता के हाथों चेतन की मा ने अगणित ऐसी यातनाएँ सहीं। इच्छा न होने पर भी वह अपनी ददेस के समस्त पूजा-पाठ, व्रत-नियम, पीर, फकीर रस्म-रिवाज मानती रही। उन सब दिनों में उसकी डाँट-फटकार सुनती रही। मानसिक और शारीरिक यातनाएँ सहती रही, और यह सिलसिला तब तक जारी रहा जब तक इस क्रूर ददेस की मृत्यु ने चेतन की मा को इन सब यातनाओं से मुक्त नहीं कर दिया।

रहे उसके पति, तो बचपन में अपनी मा की मृत्यु पर उन्होंने अपनी इसी दादी का दूध पिया था (कम-से-कम दादी यही कहा करती थीं कि उसके स्तनों में तब तक दूध उतर आया था) फिर यह कब सम्भव था कि स्वभाव की क्रूरता उनमें न होती। इसके अतिरिक्त कोई ऐसा ऐब न था जो वे न करते हों—शराब वे रोज़ पीते, दीवाली के दिनों में जुआ खेलते (और शराब पीकर खेलने के कारण सदैव हारते) सट्टा वे लगाते, और दूसरे बीसियों तरीकों से रुपया लुटाते। फिर ऐसे अवसरों की कमी नहीं जब वे दूसरी स्त्रियों को घर ले आये और उनके सामने (उनके कहने पर अथवा उन्हें ख़ुश करने के हेतु) उन्होंने चेतन की मा को निर्दयता से पीटा। आयु भर (स्कूल की मास्टरी छोड़ रेलवे में तार बाबू, असिस्टेण्ट और फिर स्टेशन मास्टर बनने पर भी) कभी भड़कीला कपड़ा उसे नहीं पहनने दिया। कभी भूले से वह छत पर चली गई तो चरित्रहीनता के बीस ताने दिये, कभी घूँघट ऊँचा किया तो बीस गालियाँ दीं और एक बार गली में उसे देख लिया तो वहीं से घसीटते हुए अन्दर ले गये।

× × ×

लेकिन इसके बावजूद अपने इस पति को अपना समस्त प्रेम, समस्त श्रद्धा, समस्त प्यार, समस्त आदर, सब सत्कार चेतन की मा ने दिया। स्वप्न में भी उनका बुरा न सोचा (यह अत्युक्ति नहीं धर्म और कर्म-गति की

जंजीरों में जकड़ी ऐसी अनेक स्त्रियाँ इस पुण्य-भूमि भारत में मिल जाएँगी) सदैव उनकी स्मृति और उन्नति के लिए अनुष्ठान कराये, प्रतिवर्ष जालन्धर के प्रसिद्ध ज्योतिषी पण्डित आत्माराम से वर्षफल बनवाकर जप करवाये। सत्यनारायण की कथाएँ कराईं। पति की दीर्घायु की कामना से सब व्रत रखे। समय-कुसमय आत्माभिमान को तजकर उनकी सहायता की, उनके कारण चौदह वर्ष अपने पिता का मुँह न देखा (जिसने एक बार उनकी निन्दा की थी) और अन्य लोग तो दूर रहे, कभी अपने बच्चों से भी अपने पति की बुराई नहीं सुनी।

काकड़ाँ का तेली

'अढ़ाई रुपये' मौलू ने सिर हिलाकर अपनी पत्नी की ओर देखा—उन आँखों से, जो मानों यह कह रही थीं कि कम्बख़्त ताँगेवाले की अक़ल शायद ठिकाने नहीं रही।

अभी मुश्किल से आठ-साढ़े आठ का वक्त होगा, किन्तु दिन पहाड़-सा निकल आया था। सूरज बिल्कुल सिर पर मालूम होता था। गर्मी इतनी थी कि दम घुटा जाता था। गर्द की हल्की-सी धुंध चारों ओर छाई हुई थी और इस कारण किरणें यद्यपि सीधी न पड़ती थीं तो भी शरीर के नंगे भागों में नोकें-सी चुभती हुई महसूस होती थीं।

मौलू ने अपनी बड़ी-सी पगड़ी को ठीक किया (जिसे उसकी पत्नी ने रात को रेठों के पानी से धोया था और चावलों की कनी को पकाकर कलफ़ लगाया था और जिसे दोनों सिरों से पकड़कर उसकी दोनों बेटियों ने आँगन में चक्कर लगाकर सुखाया था—जो रात भर तह करके रखी रही थी—जो इस समय उसके सिर पर चमक रही थी और सिर के झटके से एक ओर को हो गई थी) फिर उसने अपनी सफ़ेद दाढ़ी पर (जो ओठों के पास पीली सी हो गई थी।) हाथ फेरा, गठड़ी को बायें कन्धे पर करके दायें हाथ से तहमद को ज़रा-सा झटका दिया और चल पड़ा।

बीबाँ, उसकी पत्नी, ने सामने जाते हुए ताँगे के पीछे उड़ती हुई धूल में आँखें गड़ा दीं और बोली—'अढ़ाई रुपये, इतने से तो पन्द्रह दिन घर का ख़र्च चल सकता है, और नहीं तो फज्जे की कमीज़ें और मेरे नन्हें चिराग़ की कई कुरतियाँ बन सकती हैं।' और उसने गोद में लिये हुए उबली-उबली सूजी-सूजी आँखोंवाले काले स्याह बच्चे को मुहब्बत से चूम लिया।

जूते के साथ गर्द उड़कर मौलू के तहमद पर पड़ रही थी। रात उसकी पत्नी ने पगड़ी और कमीज़ के साथ उसको भी धोया था और नील भी दिया था, जो शायद रात के अँधेरे में अधिक दे दिया था, क्योंकि तहमद

की सफ़ेदी में हल्की-सी नीलाहट साफ़ दिखाई दे रही थी और ज्यों ज्यों गर्द पड़ती थी, वह और भी उभरती आती थी—मौलू ने फिर एक झटका देकर तहमद को ऊपर ठोंस लिया। 'इन साले ताँगेवालों ने सड़क का सत्यानाश कर दिया है, मिट्टी मैदा बन गई है'—और उसने अपनी पत्नी और उसके पीछे आनेवाली दोनों लड़कियों और सात-आठ वर्ष के बच्चे से कहा कि वे सड़क छोड़कर मेंड़-मेंड़ होकर चलें।

× × ×

लेकिन वहाँ तो सिर्फ़ ताँगे ही चलते थे, जब मौलू तीन-चार मील चलकर मीलोंवाल के पास पहुँचा, जहाँ मोटर लारियाँ भी तशरीफ़ लाती थीं और बकरियों और भेड़ों का एक रेवड़ 'मैं-मैं' 'मैं-मैं' करता हुआ क़स्बे से निकला और रात-भर बाड़े में बन्द रहने के बाद चंचल और शोख़ बकरियाँ, (जो माएँ न बनी थीं और जिनके स्तन इतने भारी न थे कि उनके नीचे थैली की ज़रूरत पड़े)—और जीवन की कटु वास्तविकता से अभिज्ञ लेले कुलाचें भरने लगे तो मौलू को इस मैदे की यथार्थता का पता लगा—गर्द इस तरह उड़ी कि उसके लिए आँख खोलना और मुड़कर अपने बच्चों को देखना तक असम्भव हो गया।

जब तूफ़ान कुछ थमा और बकरियों और भेड़ों की आवाज़ों को दबाती हुई चरवाहों की कर्कश गालियाँ श्रवण-शक्ति की सीमा से परे चली गईं, तो मौलू सड़क को पार करके दूसरी ओर गेहूँ के कटे हुए खेत में जा खड़ा हुआ। गठड़ी उसने उतारकर धरती पर रख दी, तहमद और कमीज़ को अच्छी तरह झाड़कर उसने सिर से पगड़ी उतारी और उसे भली भाँति झाड़ा; कमीज़ के दामन को उलटा करके उससे मुँह पूँछा, फिर पगड़ी बाँधी और अपने बीवी-बच्चों को आवाज़ दी कि वे भी सड़क के इस किनारे आ जायँ।

धूल जैसे दायीं ओर धरती और आकाश के मध्य जाकर लटक गई थी। एक लम्बी सी लकीर बन गई थी। ज्यों-ज्यों खेड़ आगे बढ़ता जाता था, यह लकीर भी बढ़ती जाती थी। इस बढ़ती हुई लकीर की ओर देखकर और दिल ही दिल में चरवाहों को कई अश्लील गालियाँ देकर आख़िर मौलू ने कहा—'बेतमीज़ नहीं जानते कि रास्ते में शरीफ़ लोग जा रहे हैं, ज़रा खबर-

दार ही कर दें कि भई एक तरफ़ हो जाओ ! बस उड़े चले जाते हैं, जैसे मुहिम सर करने जा रहे हों—हरामज़ादे !' और उसने अपनी मूँछों को दो बार प्यार देते हुए अपनी ठाड़ी पर हाथ फेर लिया।

'शरीफ़' से मौलू का क्या अभिप्राय था—यह बात उसे स्वयं मालूम न थी। वह 'काकड़ाँ' का तेली था—गाँव के इस किनारे, जहाँ बरगद का एक महान् विटप बढ़कर आधे जौहड़ को अपने अधिकार में ले चुका था, उसने एक छोटा-सा कोल्हू लगा रखा था। जौहड़ के किनारे किनारे रूड़ियों* के ढेर लगे हुए थे। कभी जब वर्षा होती तो जौहड़ का पानी अपने किनारों के ऊपर से होकर बह निकलता, मार्ग अवरुद्ध हो जाते, टाँगें घुटनों तक कीचड़ में धँस जातीं और रूड़ी के ढेरों की दुर्गंध वट के साये की नमी में जैसे वहीं जमकर रह जाती—लेकिन अपने जीवन के ५५ वर्ष मौलू ने इसी स्थान पर व्यतीत किये थे। गाँव से बीस मील परे क्या होता है, इसकी उसे कभी ख़बर न हुई थी। जीवन में शायद तीन-चार ही ऐसे अवसर आये थे जब उसे ऐसे धुले हुए कपड़े पहनने को मिले थे। ईद पर हर साल वह अवश्य कपड़े बदला करता था, किन्तु उसका कपड़े बदलना यही होता कि नंगे बदन रहने के बदले वह उस दिन कमीज़ भी पहन लेता या बीबाँ अधेले के रीठे लेकर उन्हें मल डालती, नहीं उसकी आयु तो तेल में सने हुए काले, चिकट कपड़ों में गुज़र गई थी। कपड़ों में क्या—आयु का अधिकांश भाग तो उसने मात्र एक तहमद में गुज़ार दिया था। जिस तरह पास रहते हुए भी जौहड़ के गंदे पानी और उसके किनारे लगे हुए गंदगी के ढेरों में उसके लिए कोई दुर्गंध न रही थी, इसी तरह तेल और पसीने से तर गन्दे, मैले, जीर्ण, जर्जर कपड़ों के लिए भी उसकी संज्ञा मर गई थी। और रही गर्द, तो मात्र तेल के काम से इस गाँव में आजीविका की सूरत न देखकर उसने वहीं, कोल्हू के एक ओर चाक लगा रखा था जहाँ वह घड़े, कुज्जे, लोटे, दौरियाँ, मटके बनाया करता था। जाति से वह कुम्हार था या तेली ?—इस बात का ख़ुद उसे पता न था। अपने दादा और फिर अपने पिता को उसने यही काम करते देखा था और जब उसने होश सम्हाला था वह यही काम किये जा रहा था। जब उसके

* रूड़ी=गंदगी।

हाथ तेल में न होते, तो मिट्टी में होते। रही शिक्षा तो कुरानेपाक की कुछ आयतों के अतिरिक्त (जो वह ग़लत उच्चारण के साथ बड़ी तन्मयता से पढ़ा करता था) उसने वे सब गालियाँ सीखी थीं जो उसके दादा, फिर बाप और फिर बड़े भाई दिया करते थे। किन्तु आज इस मिट्टी और इस वातावरण के विरुद्ध, जिसमें कि वह जन्मा, पला और परवान चढ़ा, जो ऐसी घृणा की भावना उसके मन में उत्पन्न हो गई और वह नग्न, जीर्ण-शीर्ण तहमदों में आवृत, अपने कपड़ों के अभाव की ओर से बेपरवाह, चरवाहों को बे-तमीज़ और असभ्य समझने लगा, तो इसका कारण था। पहले तो यह कि वह अपने उस छोटे भाई के लड़के की शादी में शामिल होने के लिए जा रहा था, जो लाहौर रहता था और देहाती की अपेक्षा अधिक शहरी हो गया था, फिर देहातियों के लिए शहरवाले शरीफ़ होते हैं और चूँकि वह स्वयं एक शरीफ़ आदमी के लड़के की शादी पर जा रहा था, इसलिए वह भी शरीफ़ ही था फिर यह कि उसने अत्यंत साफ़ सुथरे हुए कपड़े पहन रखे थे—और शराफ़त तो एक आपेक्षिक-सी चीज़ है—शरीफ़ वह है जो शरीफ़ नज़र आये और काकड़ाँ में रहते हुए वह जो कुछ भी हो, इस रास्ते पर जाता हुआ वह काफ़ी शरीफ़ और प्रतिष्ठित मालूम होता था।

× × ×

वैरोके के समीप एक खाल पानी से भरी, किसी बड़े अजगर की भाँति, मज़े से रींग रही थी। मौलू ने उसे पार किया, फिर गठड़ी रखकर हाथ बढ़ा, बच्चे को थामा और अपनी पत्नी को खाल पर करने में सहायता दी। रहमाँ पहले स्वयं छलाँग मारकर इधर आई, फिर उसने फज्जे को पार उतरने में मदद दी, किन्तु लहराँ के जूते की एक मेख़ उभर आई थी और उसकी दायीं एड़ी में घाव हो गया था। नीचे धरती गर्म लोहे की भाँति तप रही थी, इसलिए वह नंगे पाँव चलने का साहस न कर सकी थी और एड़ी उठाये, अपने दुपट्टे से गर्दन पर निचुड़ते हुए पसीने को पूँछती हुई, चली आ रही थी और बहुत पीछे रह गई थी।

'अरी तू अब तक पीछे ही लटकती हुई चली आ रही है, पाँव तेरे टूट

गये हैं क्या'—और पल भर के लिए अपनी शराफ़त को भूलकर मौलू ने एक अश्लील गाली अपनी लड़की को दे डाली।

'मुझसे चला नहीं जाता', लहराँ ने जैसे रोते हुए कहा।

मौलू ने गठड़ी उठाकर जामुन के एक पेड़ के नीचे रख दी। 'लाओ इधर, मैं इस मेख़ को ठीक कर दूँ! अभी ग्यारह-बारह मील हमें जाना है।'

बीबाँ अपने आँचल से अपने आपको हवा करती हुई, वहीं वृक्ष के नीचे घास पर बैठ गई और नन्हे को दूध पिलाने लगी।

रहमाँ ने खाल के पानी से मुँह धोया और गीले हाथ फ़ज्जे के मुँह पर फेरे। और खाल पर पहुँचकर लहराँ ने जूते अपने बाप की ओर फेंक दिये और फिर फलाँग कर इस ओर आ गई किन्तु पाँव उसका अब भी लँगड़ा रहा था।

मौलू ने मेख़ को देखा—उसकी पतली-सी नोक, जिसका ज़ंग घाव की नमी के कारण साफ़ हो गया था, किसी नव-वय के विद्रोही की भाँति सिर उठाये चमक रही थी। कहीं से ईंट का एक टुकड़ा ढूँढ़कर मौलू ने उस नोक को तोड़ दिया। उसे कुन्द कर दिया। फिर निरन्तर चोटों से उसे बहुत ज़्यादह अन्दर धकेल दिया और मुँह पर पानी के छींटे मारकर उसे तहमद के दामन की उल्टी तरफ़ से पूँछता हुआ कुछ क्षण सुस्ताने के लिए अपनी पत्नी के पास आ बैठा।

'वैरोके तो बस पास ही है, इस आमों के बाग़ के पीछे; यहाँ से सुनते हैं अटारी दस मील है। तो मज़े से तीसरे पहर वहाँ जा पहुँचेंगे।' और फिर ताँगेवाले की बात का ख़याल आ जाने से उसे हँसी आ गई, 'साला अढ़ाई रुपये माँगता था। छै मील तो हम आ गये।

'अढ़ाई रुपये', उसकी पत्नी ने कहा, 'जैसे हमारे यहाँ रुपयों के ख़ज़ाने हों। वहाँ जाएँगे तो क्या हसन खाँ के बच्चों के लिए कुछ न लेकर जाएँगे?'

यह हसन ख़ाँ, जो अपने जीवन के ३५ वर्ष तक गाँव में सिर्फ़, 'हस्सू' के नाम से पुकारा जाता रहा, लाहौर में ईश्वरसिंह सरकारी ठेकेदार का मेट था। जब लोपोके की नहर बननी शुरू हुई, तो न जाने किस तरह; मौलू आज तक इस बात को नहीं समझ सका, हस्सू जाकर उसके मज़दूरों में शामिल हो

गया। छः आने दैनिक मज़दूरी पर फिर ठेकेदार ईश्वरसिंह ने ख़ुश होकर उसे पाँच रुपये महीने पर मेट बना लिया, फिर आठ कर दिये और जब इस काम को ख़त्म करके ठेकेदार ईश्वरसिंह लाहौर चला गया, तो अपने इस विश्वसनीय मेट को भी साथ ले गया। इसी दिन से 'हस्सू' 'हसन ख़ाँ' बन गया था। गाँव में जब वह एक बार आया तो चौड़े पाँइचों की शलवार, बोस्की की कमीज़ और सिर पर कुल्लेदार साफ़ा उसने पहन रखा था, जिसका तुर्रा एक फूल की भाँति खिला हुआ था—मौलू आश्चर्यान्वित रह गया था। और समझ न पाया था कि किस तरह उसके इस छोटे भाई ने इतना ओहदा और इतना इल्म प्राप्त कर लिया है?

इस जामुन की छाया में बैठे-बैठे, अपनी तहमद की गाँठ खोलकर मौलू ने सब पैसे निकाले। अधिकांश पर मिट्टी और तेल की काली तह जम गई थी और यद्यपि धरती से निकालकर तहमद में बाँधने से पहले उसने उन्हें अच्छी तरह धो लिया था, तो भी तहमद का वह हिस्सा, जसमें पैसे बाँधे गये थे, काला हो गया था।

यद्यपि घर से वह उन्हें गिनकर लाया था और यद्यपि चन्द पैसों के सिवा उनमें से कुछ अधिक ख़र्च नहीं हुआ था, तो भी घास पर तहमद का एक पल्ला बिछाकर उसने उन्हें दोबारा गिना—चार रुपये और कुछ आने थे। और यह रक़म उसने बड़ी कठिनाई से पैसा-पैसा करके साल भर में जमा की थी, बल्कि यों कहना चाहिए कि दो सालों में जमा की थी। ज्यों ही हस्सू का लड़का आठ वर्ष का हुआ और उसकी सगाई हुई, उन्हें इस बात की चिन्ता हो गई थी कि उसका निकाह बस अब समीप ही है, इसलिए उन्हें कुछ न कुछ बचाना चाहिए और चूँकि हस्सू लाहौर चला गया था और उसने यह भी बता दिया था कि वह लड़के की शादी लाहौर ही करेगा, इसलिए दो साल से वे इस विवाह में जाने के लिए कुछ न कुछ बचाने का प्रयास करते थे और दो साल से ही बच्चे इस विवाह में शामिल होने के ख़याल से और इस बात का ज़िक्र कर-करके कि उन्हें वहाँ क्या-क्या खाने को और क्या-क्या उपहार-स्वरूप मिलेगा, ख़ुश हो रहे थे। किन्तु गत वर्ष मौलू केवल दो रुपये बचा पाया था और इस वर्ष मात्र दो रुपये और कुछ आने।

और इन दो वर्षों में उसने परिश्रम भी कम न किया। जितनी सरसों वह प्राप्त कर सकता था, उतनी उसने प्राप्त की थी और जितना तेल इर्द-गर्द के गाँवों में बेचा जा सकता था, उसने बेचा था। अपनी सप्लाई को बढ़ाने के लिए उसने सरसों में तोरिया मिलाने से भी संकोच न किया था और जब उसके ग्राहकों ने शिकायत की थी कि तेल बालों में ज़्यादह लगता है, तो उसने बड़े गर्व से कहा था कि ख़ालिस कच्ची घानी का जो हुआ, नहीं नाख़ालिस तेल यदि लगाओ तो यह भी पता नहीं चलता कि बालों में कोई तेल लगा है या नहीं! फिर फ़सल के दिनों में उसने कटाई का काम भी किया था और पीर दौले शाह और क्रीम शाह की ख़ानकाहों पर लगनेवाले मेलों में घड़ों और मटकों की दूकानें भी लगाई थीं, लेकिन इस पर भी वह गत दो वर्ष में यही कुछ बचा सका था। और बिना सालन की रूखी रोटी के सिवा उन्हें कभी कुछ प्राप्त न हुआ था। यह ठीक है कि इस विवाह के ख़याल से उसने अपनी बीबी और बेटियों को गबरून की एक-एक कमीज़ और दरेस की एक-एक सुथनी सिलवा दी थी, स्वयं भी एक तहमद और साफ़ा खरीदा था और फज्जे को भी एक तहमद ले दी थी, लेकिन इन सबके लिए तो वह मौलो शाह का क़र्जदार था जिससे उसने वादा किया था कि अगले वर्ष वह जितना तेल निकालेगा, उसकी दूकान में डाल देगा।

वहीं बैठे-बैठे मौलू ने हिसाब लगाना शुरू किया, 'यदि हम अटारी से जाकर चढ़ें तो चार चार आने तो मोटर का किराया लगेगा इस तरह साढ़े चार टिकटों के ..

'लेकिन साढ़े चार किस तरह?' उसकी पत्नी ने बात काटकर कहा, 'फ़ज्जे का टिकट किस तरह लग सकता है, अभी कल का तो बच्चा है, तु ा उसे ज़रा गोदी में उठा लेना!'

'ये मोटरवाले एक ही शैतान होते हैं', मौलू ने कहना शुरू किया 'अगर माँगेंगे? तो सुना है तीन साल से बड़े का टिकट लगता है।'

'हाँ लगता है!' बीबाँ बोली—'वे न माँगें तो भी तुम दे देना!'

'तो ख़ैर एक रुपया टिकटों का सही, और फिर शहर का मामला है। हसन खाँ की वहाँ शान होगी। पैदल घिसटते हुए उसके यहाँ कैसे जाया

जायगा ? पड़ौसी न कहेंगे—कैसे भिखभंगे रिश्तेदार हैं इसके। ताँगे तक पर नहीं आ सके।'—तीन-चार आने ताँगे पर भी ख़र्च करने पड़ेंगे।

बीबाँ को इस बात का विश्वास था और अपने बच्चों को भी उसने कई महीने पहले कह रखा था कि चचा के घर से उन्हें बहुत कुछ मिलेगा, इसलिए उसने कहा, 'एक रुपये की मिठाई हस्सू के बच्चों के लिए ले जाना, जब वे हमारे बच्चों को इतना कुछ देंगे तो हम किस तरह ख़ाली हाथ जाएँगे ?'

ख़ैर, मौलू हिसाब लगाकर बोला—सवा रुपया वापसी पर ख़र्च आयेगा तो बाक़ी बड़ी मुश्किल से बाहर आने एक रुपया बचेगा।'

लहराँ ने अचानक कहा—मेरे पाँव में छेद हो गया है, जूता मेरा बिल्कुल घिस गया है, मुझे जूता ले देना।

रहमाँ बोली—मेरी चुनरी फट गई है मुझे एक नयी चुनरी ले दो, चचा की लड़की के सामने क्या मैं यह फटी हुई चुनरी पहनूँगी ?

मौलू की क़मीज़ का दामन पकड़ते हुए फ़ज्जे ने कहा—अब्बा हमें बूट ले देना !

'चलो बैठो !' बीबाँ ने एक झिड़की दी, 'सात आठ दिन वहाँ रहना है, तो क्या अपने पास एक कौड़ी भी न रखेंगे, फिर लम्बा रास्ता है, शरबत-पानी की भी ज़रूरत पड़ जाती है।'

× × ×

लोपोके के मोड़ पर उन्हें एक ताँगा जाता हुआ मिला। लहराँ के जूते की मेख़ फिर बाहर निकल आई थी, किन्तु घायल हृदय की भाँति, जिसमें कुन्द-सा मज़ाक भी छेद कर देता है वह कुण्ठित, मुड़ी हुई, मेख़ लहराँ की घायल एड़ी को और भी घायल कर रही थी और वह लँगड़ा-लँगड़ाकर चल रही थी और काफ़ी पीछे रह गई थी और फ़ज्जा भी चिल्लाने लगा था कि उसे उठा लिया जाय और धूप की शिद्दत से बीबाँ की गोद का बच्चा भी बेहाल होने लगा था।

मौलू ने बेपरवाही से ताँगे की ओर देखते हुए जैसे ईंट फेकते हुए पूछा, 'क्यों भई ?'

'कहाँ जाना है', ताँगा चलाते-चलाते हुए ताँगेवाले ने पूछा।

'अटारी !'

'पाँच-पाँच आने !'

'पाँच आने, पाँच आने ?'

'तुम्हें क्या देना है ?'

लेकिन मौलू ने कुछ उत्तर न दिया। तहमद को फिर ऊपर ठोंसकर पगड़ी के शिमले से गर्दन और मुँह का पसीना पूँछकर गठड़ी के बोझ से धीरे-धीरे दबनेवाली गर्दन को उठाकर वह चल पड़ा।

लहरा और फ़ज्जे ने एक बार कहा—अब्बा ताँगा...

कड़ककर मौलू ने उन्हें चुप करा दिया। बीबाँ ने भी बच्चे को कन्धे से लगाकर झुलाते हुए मुँह में ज़बान हिलाते हुए ओ...ओ...करना आरम्भ कर दिया और जब इस पर भी बच्चा न माना तो कमीज़ के बटन को खोलकर उसने अपनी छाती निकालकर उसके मुँह में दे दी।

× × ×

सड़क बिल्कुल कच्ची थी। सड़क तो उसे न कहा जा सकता था। किसी ज़माने में वहाँ ज़रूर सड़क रही होगी, किन्तु अब तो उसकी विशालता को देखकर उस पर किसी ऐसे दरिया का धोखा होता था, जिसके दोनों किनारे फैलते-फैलते आस-पास की ऊसर धरती में जा मिले हों—हाँ दोनों ओर पराँह के निरर्थक टेढ़े-मेढ़े पेड़,—जिनके तने वर्षों के वर्षातप के कारण खोखले हो चुके थे, जो सड़क की सुन्दरता में वृद्धि करने की अपेक्षा उसकी कुरूपता ही बढ़ाते थे, जिनकी लकड़ी जलाने तक के काम न आती थी, जिनके पत्तों को बकरियाँ तक न खाती थीं और जिनकी शाखाओं पर बये तक का घोंसला न था—इस सड़क के अस्तित्व की गवाही देते थे और कहीं कोई बबूल का काँटेदार वृक्ष अपनी लम्बी-लम्बी शाखाओं को सड़क पर झुकाये हुए खड़ा था कि यदि गर्मी के ताप से जलता हुआ कोई व्यक्ति छाया में आने का प्रयास करे तो उसकी पगड़ी उतर जाय अथवा उसका चेहरा ज़ख़मी हो जाय।

ईंट तो दूर, किसी कंकर तक का निशान वहाँ न मिलता था, इसलिए

किसी विटप के तने पर रखकर किसी ढेले से गाड़ने के बावजूद जब मेख़ बार-बार बाहर निकल आती थी और एड़ी का घाव बढ़ता जाता था और चलना उसके लिए प्रतिक्षण दूभर हुआ जा रहा था तो आख़िर तंग आकर लहराँ ने जूते हाथ में उठा लिये। धूल धधकती हुई राख की भाँति जल रही थी और प्रायः जब गर्द में टख़नों तक पाँव धस जाते तो समस्त शरीर में जलन की एक लहर दौड़ जाती थी, किन्तु मेख़ की चुभन से टीस की जो लहर दौड़ती थी, वह शायद जलन की इस लहर से अधिक कष्ट-दायक थी, इसलिए वह चली जा रही थी, किन्तु इस पर भी वह सबसे पीछे थी।

और मौलू अब भी सबसे आगे था। इतनी आयु बीत गई थी, वह कभी इस सड़क पर न आया था। यदि उसे मालूम होता कि यह सड़क इतनी ऊबड़-खाबड़, वीरान और छाया-रहित है तो वह कभी इस ओर मुँह न करता—विशेषकर उस समय जब उसके साथ बच्चे होते—उसके कोल्हू पर तो वट की घनी छाया थी और निकटवर्ती देहात में कभी-कभी तेल लेकर जाने अथवा मिट्टी के घड़े-मटके लेकर मीलोवाल या वैरोके तक आने के अतिरिक्त उसने कभी इस ओर का सफ़र न किया था। उसकी दुनिया बरगद के एक घने पेड़ की छाया में बसती थी जहाँ तपती-जलती हवाएँ शीतल हो जाती थीं और गर्म धूप भी ठंडक पहुँचाती थी और कभी जब वह खुदा के सामने नत-मस्तक होता और कुरान की आयतों को अपने ग़लत उच्चारण से पढ़ता तो ख़ुदा का जो अस्तित्व उसके सामने आता, वह कुछ इस बड़े घने वट के वृक्ष का-सा ही होता—बड़ी-बड़ी शाखाओंवाला, सायेदार, अगनित घोसलों को अपनी शाखाओं में छिपाये—लेकिन यह तपती वीरान दुनिया हरियाली का एक तिनका भी नहीं और इस मरु में किसी जलते हुए तीर की भाँति जलती-जलाती तपती-तपाती यह सड़क! यदि उसे मालूम होता तो कभी बच्चों को यों साथ न लाता—कभी भी न लाता!

किन्तु इस ख़याल को उसने तत्काल अपने दिल से निकाल दिया और वह फिर अकड़कर चलने लगा। तहमद को झटका देने अथवा कमीज़ को झाड़ने का ख़याल उसे कब का भूल चुका था—कोई साइकिल सवार या भूला-भटका राही भी गुज़रता तो उन पर मिट्टी की तह छा जाती और जो

लू कभी इधर से उधर और कभी उधर से इधर चलने लगती शरीर में प्रवेश करके नसों तक को झुलसा रही थी और कमूकमार कोई बगूला मिट्टी बरसाता हुआ निकल जाता। तहमद का नीलाहट लिये हुए सफ़ेद रंग अब मटियाला हो गया था। पगड़ी की वह दमक न रही थी और कपड़ों को उल्टी तरफ़ से चेहरे या गर्दन का पसीना पूँछने के बदले अब वह सीधी तरफ़ को ही काम में लाये जा रहा था।

उससे कुछ अन्तर पर उसकी पत्नी चली जा रही थी। उसके समस्त प्रयास बच्चे को पुचकारने की ओर लगे हुए थे, फिर रहमाँ थी—जिसे शायद उसके पड़ोसी ग्वाले नूरे का ख़याल इस पिचलती हुई धूप की तपन को महसूस न होने देता था और शायद इस बरसती हुई आग में भी स्वप्न देखती हुई चली जा रही थी—उसकी अँगुली थामे फ़ज्जा चला रहा था, जिसे कभी वह उठा लेती थी और कभी कमर, कन्धा या बाँह थक जाने पर फिर उतार देती थी—फूल-सा चेहरा उसका कुम्हला गया था, ओंठ सूख गये थे; गन्दे मैले हाथों से बार-बार मुँह का पसीना पूँछने के कारण चेहरे पर उसके कई दाग़ लग गये थे और चाल उसकी उत्तरोत्तर धीमी होती जा रही थी।

और इन सबके पीछे पूर्ववत् कभी जूता पहनती और कभी उतारती हुई लहराँ लँगड़ाती-लँगड़ाती चली जा रही थी।

× × ×

नहर से उतरकर मौलू ने देखा—दायीं ओर एक बरगद का घना पेड़ है—मादा बरगद का। जिसका तना बहुत उँचा नहीं उठता, मोटी-मोटी लम्बी-लम्बी सिर को छूती हुई छतरी की भाँति फैलती चली जाती है—उसकी एक शाखा पर दो मोर बैठे हैं, निश्चित और मस्त, उनके लम्बे-लम्बे चमकीले पंख धरती को छू रहे हैं और दूर किसी कुएँ की गाधी पर बैठा हुआ कोई जाट 'हीर वारिस शाह'* अलाप रहा है। उसकी सुरीली, बारीक, लेकिन ऊँची आवाज़ इस सूनी वीरान निस्तब्ध दुपहरी में गूँजती लहराती हुई उस तक आ रही है:

* पंजाबी का अमर काव्य।

घर आ ननान ने गल्ल कीती, भाबी इक जोगी नवाँ आया नीं।
कन्नीं ओसदे दरशनी मुंद्रां ने, गल हैकला अजब सुहाया नीं!'

अतीत के किसी दूरस्थ प्रदेश से आनेवाली स्मृति की भाँति तरुण यौवन के दिन मौलू की आँखों के सामने फिर गये—जब वह अपने वट की शाखा पर बैठकर अथवा किसी आम या जामुन के तने से पीठ लगाये हीर वारिस शाह गाया करता था और उसके जी में आई कि वह पूरे गले से तान लगाये :

'फिरे ढूँढदा विच हवेलियाँ दे, कोई ओस ने लाल गँवाया नीं!
हीरे किसे रजवंस दा ओह पुत्तर रूप तुद्ध थीं दून सवाया नीं!'

किन्तु यह तान उसके हृदय में ही रह गई अपनी लम्बी डाढ़ी अपने शरीफ़ लिबास और अपने पीछे चले आनेवाले बीवी-बच्चों का उसे ख़याल आ गया और उसके हृदय से बरबस एक दीर्घ निश्वास निकल गया।

तभी फ़ज्जे ने रोते हुए सूखे गले से कहा—अब्बा मुझे प्यास लगी है, अब्बा मुझे उठा लो!

और मौलू ने मुड़कर देखा—लहराँ बेचारी थककर पराँह की एक टेढ़ी-सी जड़ पर बैठ गई थी।

'मर गई वहाँ ही तू!' कड़ककर मौलू ने कहा।

लहराँ उठी और लँगड़ाती-लँड़गाती चलने लगी और फिर उसने मुड़कर अपने बेटे को डाँटा कि ज़रा दम ले वह सामने तो 'चोगाँवाँ' नज़र आ रहा है। वहीं चलकर लस्सी पानी पियेंगे।

× × ×

और चोगाँवाँ तक तो वे दोनों किसी न किसी तरह चलते आये थे। लस्सी पानी से अधिक उनके सन्तोष का कारण उनका यह ख़याल था कि अब्बा वहाँ से अवश्य ही ताँगा लेंगे। किन्तु जब कुछ सुस्ताने और सूखी रोटी को तेल के पकौड़ों के साथ जो उनके अब्बा ने अड्डे से लिये थे, पानी की सहायता से, पेट में पहुँचाने के बाद उन्हें फिर मार्च की आज्ञा मिली, तो चल तो वे पड़े, लेकिन मार्च नहीं कर सके। चोगावाँ से 'वनीके' तक इस मार्च में कई हाल्टिंग स्टेशन आये ; जब कि वे एक बीमार थके हुए घोड़े

की भाँति अड़ गये और झिड़कियाँ, गालियाँ या एक-दो चाँटे खाकर फिर चल पड़े, किन्तु वनीके के मोड़ पर जो वे एक बार रुके तो फिर नहीं बढ़े। थप्पड़ खाने पर भी फ़ज्जा टस से मस न हुआ और गालियाँ खाकर भी लहराँ बैठी दुपट्टे से आँसू पोंछती रही।

ताँगेवाले से मौलू ने बिल्कुल ही न पूछा हो यह बात तो नहीं, पूछा था, किन्तु बिना सवार होने के ख़याल से और यह जानकर कि लोप.के से चोगाँवाँ तक वह गर्द का दरिया पार करने के बावजूद अभी तक किराये में मात्र एक आने की कमी हुई है और यह जानकर कि आगे सड़क पक्की है और कहीं-कहीं शीशम के वृक्ष भी हैं, वह चल पड़ा था।

जब थप्पड़ खाकर फ़ज्जा रोने लगा, लेकिन उठा नहीं तब बीबाँ ने उसे प्यार देकर उठाना चाहा और नन्हें को रहमाँ के हवाले करके उसे गोद में ले लिया। मस्तक पर हाथ फेरते ही वह सहमकर पुकार उठी :

देखो तुम इसे पीट रहे हो, इसका पिण्डा तो भट्ठी बना हुआ है !'

और तब ज्वर के वेग से तपे हुए अपने लड़के के चेहरे को देखकर मौलू पिघल उठा और उसने अनिच्छापूर्वक एक जाते हुए ताँगे को रोका और अटारी का किराया पूछा।

'चार चार आने।' ताँगेवाले ने उत्तर दिया।

'चार चार आने, लेकिन इतना तो चोगावाँ से माँगते थे !'

'तुम क्या देते हो !'

'एक-एक आना ले लो, तीन-साढ़े तीन मील हम चल भी तो आये हैं !'

ताँगेवाले का ताँगा तो भरा हुआ था, इसलिए उसे सवारियों की उतनी ज़्यादह परवाह न थी, 'तो वहीं से जाकर चढ़ जाओ,' उसने कहा और हंटर घुमाया।

'छै छै पैसे ले लो।'

'ओ तेरी मा मर जाए !' हंटर घोड़े की पीठ पर पड़ा और वह चल पड़ा।

'दो आने।'

'अढ़ाई आने'—उसने अपने कण्ठ की पूरी आवाज़ के साथ कहा।

ताँगा काफ़ी दूर जाकर रुक गया। सवारियाँ तो पूरी थीं, किन्तु जाते चोर की लँगोटी ही सही, के अनुसार ताँगेवाले ने ये दस-बारह आने छोड़ने उचित न समझे।

रहगाँ से बच्चे को लेते हुए चिन्तातुर स्वर में बीबाँ ने जैसे अपने आप से कहा—इसका जिसम भी गर्म हो रहा है, अल्लाह ख़ैर करे! और वह ताँगे की ओर बढ़ी।

यद्यपि जहाँ दो की जगह थीं, वहाँ चार बैठे और साँस लेना तक मुश्किल हो गया, तो भी सब ने एक तरह से सुख की साँस ली।

× × ×

जब पलक झपकते ही, कम से कम मौलू को तो ऐसा ही मालूम हुआ, अटारी का मोड़ आ गया और ताँगेवाले ने कहा कि—अगर जल्दी उतरना चाहते हो तो यहीं उतर जाओ, क्योंकि यहाँ से मोटर जल्दी मिलती है तो मौलू के दिल को धक्का लगा।

'अड्डा आ गया?' उसने पूछा।

'अड्डा तो आगे है, लेकिन यहाँ से जल्दी मोटर मिल जायेगी। अड्डे पर बहुत देर बैठना पड़ेगा, वहाँ और लोग भी होते हैं और आजकल ट्रैफ़िक पोलीस भी बड़ी सख़्त हो गई है।'

ट्रैफ़िक पोलीस क्या बला है? यह बात तो मौलू की समझ में बिल्कुल नहीं आई। उसने भ्रू-भंग करके ताँगेवाले की ओर देखते हुए कहा, 'यह चालाकियाँ मैं सब समझता हूँ।'

किन्तु जब ताँगे में बैठी हुई दो सवारियाँ वहाँ उतर पड़ीं और जब दूसरों ने भी कहा कि अगर लारी जल्दी पकड़नी हो तो यहीं उतर पड़ो तो वह भी उतरा, किन्तु सड़क पर पाँव रखते ही वह गर्जा, 'बस यहीं तक लाने के बारह आने तुम माँगते हो!'

ताँगेवाले ने बेपरवाही से कहा, 'तुम्हारी मर्जी है, तुम अड्डे तक ले चलो!'

मौलू का जी चाह रहा था इस पाजी ताँगेवाले को उतारकर सड़क पर पटक दे। उसने चीख़कर कहा, 'तुम लुटेरे हो!'

ताँगेवाले ने हण्टर उठाया, 'ज़बान सम्हालकर बात करो मियाँ !'

तभी बीबाँ ताँगे से उतरकर दोनों के मध्य आ खड़ी हुई—तैश में न आओ भाई, हम पैसे मारकर न ले जायँगे, आदमी-आदमी तो देख लिया करो तुम !'

मौलू कोई बड़ी अश्लील गाली देने लगा था, पर यह सुनकर गाली देने के बदले उसने वही काले स्याह, अड़तालीस पैसे, ताँगेवाले के हाथ पर गिन दिये और शहीदी भाव से बच्चों को उतारने लगा।

'बारह आने तो इसे दे दिये, अब वहाँ किस तरह काम चलेगा'—जाते हुए ताँगे की ओर देखते हुए बीबाँ ने जैसे अपने आप से कहा।

मौलू चीख़कर कुछ कहने ही लगा था कि उसकी दृष्टि अपने नन्हे बच्चे की ओर चली गई जिसका स्याह चेहरा ज्वर के वेग से और भी स्याह हो रहा था। उसने उसके माथे पर हाथ रखा, कुर्ता उठाकर पेट को देखा, 'जिसम तो इसका जल रहा है।' उसने कहा और फिर एक आती हुई मोटर से बचाने के लिए अपने बीबी-बच्चों को एक तरफ़ करके वह उन्हें किनारे पर लगे हुए शीशम के साये में ले चला।

'अरे मौलू तुम किधर ?' आश्चर्य से वृक्ष के नीचे बैठे हुए एक व्यक्ति ने पूछा।

'अरे भाई, हसन के लड़के की शादी में लाहौर जा रहा था', मौलू ने निराशा भरी आवाज़ में कहना शुरू किया, रास्ते में लड़कों को बुख़ार ने आ दबाया।'

'कहाँ जा रहे हो वहाँ लाहौर में ?'

'मुज़ंग में हसन रहता है, वहीं जाना होगा, न हुआ भाई ताँगा कर लेंगे, तीन-चार आनों की बात है, सो भाई देंगे !'

'तीन-चार आने !' वह हँसा, 'तुम लाहौर कभी गये नहीं, एक रुपये से कम में वहाँ ताँगा न जायगा।'

मौलू ने बड़ी निराश निगाहों से अपनी पत्नी की ओर देखा, जो शायद कह रही थीं कि एक रुपये की मिठाई हसन के बच्चों के लिए भी लेनी है और फिर वापस आने के लिए भी पैसे चाहिए और बीबाँ की निगाहें शायद कह रही थीं कि मुए ताँगेवाले ने यों ही हमारे बारह आने ठग लिये।

'तुम किधर आये थे नवाब !' मौलू ने पूछा।

''भीलो शाह की बोरियाँ स्टेशन पर छोड़ आया हूँ !'

'तो अब वापस जा रहे हो ?'

'चला ही आ रहा हूँ, यों ही ज़रा दम लेने के लिए रुक गया था !'

तब फिर मौलू ने बीबाँ की ओर और बीबाँ ने मौलू की ओर देखा और मौलू ने कहा, 'क्या कहूँ यार, बच्चों को बुख़ार ने आ दबाया है, हस्सू ने तो बहुतेरा लिखा था कि बीबी-बच्चों के साथ आना, लेकिन यहाँ तक आते-आते बच्चे बीमार हो गये, लहराँ का पाँव ज़ख्मी हो गया है और फ़ज्जे और चिराग़ का पिंडा गर्म तवा बना हुआ है, सोचता हूँ, वहाँ कहीं तक़लीफ़ बढ़ न जाए। शादी का मामला है, खाने-पीने में परहेज़ रहता नहीं, और फिर वहाँ वह बात थोड़े ही है जो अपने घर में है। डाक्टर...

'ये डाक्टर साले तो अच्छे भले को बीमार कर देते हैं।' नवाब ने कहा।

'अरे बाबा उन तक हमारी पहुँच कहाँ ?' और फिर एक बार पत्नी की ओर देखकर मौलू ने कहा, 'तुम एक मिहरबानी करो नवाब, इन सबको ले जाओ, मुझे तो जाना ही होगा कल बारात चढ़ेगी !' और फिर उसके उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना उसने बच्चों को बैलगाड़ी पर चढ़ाने का आदेश दिया।

नवाब गाड़ी पर आ बैठा।

'रास्ते में मीलोवाल के निरंजनदास हकीम से कुछ दारू लेती जाना', उसने गाड़ी के पीछे चलते-चलते हुए अपनी पत्नी से कहा।

तभी दूर सड़क पर अमृतसर की ओर से एक लारी आती हुई दिखाई दी।

मौलू ने जल्दी-जल्दी अपने बच्चों का प्यार लिया।

फ़ज्जे के जलते हुए मस्तक को चूमा—हम तुम्हारे लिए बूट लायेंगे !

लहराँ के सिर पर हाथ फेरा, 'तुम्हारे लिए जूता लायँगे !'

रहमाँ को डाँटा कि बच्चों का ख़याल रखना और मा से लड़ना नहीं।

फिर वह गठड़ी उठाये भागता हुआ-सा सड़क पर आ खड़ा हुआ और उसने आती हुई लारी को रोकने के लिए हाथ बढ़ा दिया।

बैंगन का पौधा

यद्यपि माहीराम ने वह बैंगन का पौधा उखाड़ दिया है, तो भी जब मैं सब्जी के खेत के मेड़ पर से होता हुआ, अपनी कोठी को जाता हूँ, मेरी आँखों में बैंगन का वह शुष्क पौधा तथा उस पर लटकता हुआ, मुरझाया, सूखा पिचका पीला बैंगन घूम जाता है।

× × ×

सर्दियों के संक्षिप्त दिन को बीते देर हो गई थी। खाना खाने के बाद एक लम्बा चक्कर लगाकर जब मैं नीचे खादी की मोटी बनियाइन, उस पर मोटी खादी की क़मीज़, उस पर गर्म कुर्ती, फिर गर्म अचकन और गुलूबन्द और इन सबके ऊपर ओवरकोट डाटे, हाथ में बैट्री लिये, बोट के एड़ीवाले अपने फ़्लेक्स के बूटों की ठक-ठक से मस्त, पूस की तीखी ठंडी, शुष्क हवा से बचने के लिए कानों को ओवरकोट के कालरों में छिपाता हुआ अपनी कोठी के बरामदे में दाख़िल हुआ, तब वहाँ एक मैली-सी चारपाई पर एक बूढ़े को जीर्ण-शीर्ण-सा, अँधेरी काली रात की भाँति काला लिहाफ़ लपेटे, खाँसते देखकर कुछ चकित-सा रह गया।

"क्यों भई, क्या बात है?" मैंने ओवरकोट की जेबों में पड़े हुए अपने दोनों हाथों को एक दूसरे के समीप लाते हुए कहा।

"कुछ नहीं बाबू जी, मैं माहीराम का आदमी हूँ।"

"माहीराम का ही सही, किन्तु इतनी सख़्त सर्दी में तुम इस खुले बरामदे में क्यों पड़े हो?"

"मेरे पास कपड़ा है बाबूजी!"

मैंने चुपचाप अपना कमरा खोला। चौदह लाइन का बड़ा डिटमार्का टेबल लैम्प जलता छोड़ गया था और यद्यपि ऊपर के दोनों रोशनदान खुले थे, तो भी कमरा गर्म हो गया था। मेरे प्रवेश करते ही गर्म लेकिन मिट्टी के तेल में लिपटी हुई तेज़ बू आई—प्रायः मेरे मित्रों ने मुझे इस प्रकार लैम्प

जलाकर छोड़ जाने से मना किया है। "नगर की गन्दी हवा को छोड़कर इस खुले में निवास करने से लाभ? वे पूछा करते हैं, यदि नगर की अस्वस्थकारी आदतों को वहाँ न छोड़ा जाय" और वे मुझे सुझाते हैं कि डाक्टरों के मतानुसार कमरे को बन्द करके अन्दर लैम्प जला रखना अत्यन्त हानिकारक है, साँस के रास्ते गन्दी हवा अन्दर जाती है, फेफड़ों पर उसका दबाव पड़ता है—मैं प्रायः ऐसा अनुभव करता भी हूँ, किन्तु इसको क्या करूँ कि मैं नित्य ऐसा करने को विवश हो जाता हूँ। जब भी कभी किवाड़ खोलकर बैठता हूँ और तीखी वायु का झोंका अन्दर आता है और मेरे हाथ सन्न हो जाते हैं और क़लम मेरे हाथ में चलने से इनकार कर देती है, तब मैं उठकर किवाड़ बन्द कर देता हूँ—जैसे सिगरेट पीनेवाले को उसकी कड़ुवी-कसैली, सिर चकरा देनेवाली गन्ध अच्छी लगने लगती है, कुछ इसी तरह यह सब मुझे अच्छा लगने लगा है।

हैट को खूँटी पर टाँग, गुलूबन्द को निकालकर, उससे सिर तथा कानों को लपेटकर मैं काम पर बैठ गया।

बैठ तो गया, किन्तु मेरी वृत्ति बरामदे की ओर ही लगी रही।

इस बूढ़े को मैंने देखा था। सुबह ही देखा था। वह बैंगन के पौधे छाँट रहा था और डाइनिंग हॉल से घर को आते हुए मैंने उससे पूछा भी था कि वह क्यों ऐसा कर रहा है। उसने बताया था कि बैंगन दो बार फल देता है। एक बार छाँट दिया जाय तो और भी बढ़ता—फूलता है। मैंने उन सूखे, पल्लवहीन बैंगन के पौधों पर निगाह दौड़ाई थी। एक पौधे पर एक मुरझाया, सूखा-सिकुड़ा पीला बैंगन लटक रहा था। वहाँ से हटकर मेरी दृष्टि उस वृद्ध पर गई थी।—उसकी उम्र न जाने कितनी थी, किन्तु वह बेहद बूढ़ा दिखाई देता था। यद्यपि सर्दी से बचने के लिए उसके पास खेती थी, तो भी उसके लकड़ी से पतले पीले हाथ, बाँस-सी पतली टाँगें, सूखा पिचका चेहरा और आँखों के गढ़े साफ़ दिखाई देते थे। तब एक विचित्र-सा ख़्याल मेरे मन में दौड़ गया था—बैंगन का पौधा जब सूख जाता है तब छाँटने पर फिर फल उठता है, सहजन भी छाँटने पर बढ़ता है। ऐसे पेड़ तथा पौधे हैं, जो छाँटने पर और भी ज़्यादा बढ़ते हैं—मानव को उस अदृश्य

स्रष्टा ने ऐसा क्यों नहीं बनाया ? किन्तु तभी अन्तर में किसी ने कहा कि मानव की वेलि भी अमर ही तो है, पुरुष-स्त्रियाँ, बच्चे-बूढ़े, इसके फल-फूल, पत्ते और शाखाएँ तो हैं, मृत्यु इसकी क़ैंची है। जब वे सड़-सूख जाते हैं—तब यह क़ैंची उन्हें काट देती है और उनके स्थान पर नित-नूतन, हरे-भरे, जीवन के उल्लास से किलकारियाँ मारते, हँसते, नाचते, गाते, फूल-पत्ते लगते जाते हैं।

किन्तु यह वृद्ध यहाँ सर्दी में क्यों आ पड़ा है ? क्या इसका घर-दर कोई नहीं ? और तनिक चौंककर मैंने पूछा—"क्यों जी तुम हो कौन ?"

"मैं जी माहीराम का आदमी हूँ।"

"हाँ, माहीराम के आदमी तो हो, लेकिन माहीराम के क्या लगते हो ?"

बूढ़ा कुछ उत्तर देने लगा था कि उसे खाँसी का दौरा हुआ। कई क्षण तक निरन्तर खाँसने के बाद अपनी साँस को कठिनाई से दुरुस्त करते हुए उसने बताया कि वह माहीराम का कुछ नहीं लगता। वह उसके देश का है। कुटुम्ब बहुत बड़ा है। पाँच छोटे-छोटे बच्चे हैं और बीबी, दो लड़कियाँ हैं ब्याहने योग्य और वह रोज़गार के लिए माहीराम के साथ चला आया है।

उसकी वाणी में कुछ ऐसी करुणा थी कि काम करना मेरे लिए दुष्कर हो गया। मैं इतने कपड़े पहने होने के बावजूद पतलून के ऊपर कम्बल डालकर गर्म कमरे में बैठा हूँ और वह ग़रीब बाहर ठंड में पड़ा है, बिस्तर के नाम पर शायद मैली फटी दुलाई उसके पास है और वह मैला काला लिहाफ़ भी शायद वर्षों का पुराना है—आर्द्र-सा होकर मैंने कहा—"तो भाई अन्दर लेट जाओ, बाहर तो बड़ी ठंड है। बरामदा दो तरफ़ से खुला है। बाहर तुम क्यों बैठे हो ?"

किन्तु तभी सीमेंट के फ़र्श पर भारी जूतों की आवाज़ सुनाई दी और दूसरे क्षण माहीराम—वह ठेकेदार गोपालदास का छः फुट तीन इंच लम्बा आदमी दरवाज़े पर आ खड़ा हुआ। बड़ी-सी पगड़ी, उसके नीचे काला मोटा कम्बल, घुटनों तक धोती और पाँवों में सेर-सवा सेर का जूता।—एक दिन छः मूलियों के लिए वह प्रेस तक एक आदमी के पीछे भागा-भागा गया

था और खेत में उसे पकड़कर उसने उसे वे पटखनियाँ दी थीं कि फिर उसने कभी उधर को मुँह नहीं किया।

"हमने स्वयं इसे यहाँ सुलाया है बाबू जी। न जाने कौन साला रात को खेतों में डाका डालता है। दो-तीन दिन देखते हो गये है। कल रात गोभी के दस फूल ग़ायब हो गये। सारे खेत में ऐसे फूल न मिलेंगे, परसों कोई पक्के टमाटर उतार ले गया। आप जानते हैं कि हमें किचन को सब्जी भी सप्लाई करनी होती है और फिर दो सौ रुपये का ठेका है। वह भी तो इसी में से पूरा करना है।

मैंने कहा—लेकिन सब्जी पर कौन डाका डाल जाता है। यहाँ तो चोरी होने की बात कभी सुनी नहीं। मेरी कोठी सुनसान में है, पास कोई कोठी नहीं, किन्तु मैं तो दरवाज़े खुले छोड़कर घंटों ग़ायब रहता हूँ। कोई बाहर का आदमी न आता हो।

"नहीं बाबू जी! बाहर का आदमी इतनी ठंड में गोभी के केवल दस-पाँच फूल लेने नहीं आ सकता।'

"किन्तु उस दिन मूलियाँ..."

"वह और बात थी बाबूजी, वह तो कोई राह चलता आदमी था। जाता-जाता उखाड़ ले गया। यह कोई यहीं का ही है—मैं साले को पकड़कर ऐसी शिक्षा दूँगा कि फिर जन्म भर किसी चीज़ को हाथ न लगाये!'

और उसके मोटे-मोटे होठ फैल गये और चेचक भरा चेहरा तन गया।

"किन्तु भाई चाहो तो इसको अन्दर सुला दो। सर्दी बहुत है।"

"नहीं बाबूजी, सर्दी आप अमीरों को लगती है। हमें सर्दी नहीं लगती। इसे तो यों ही यहाँ दिखाने मात्र के लिए सुला दिया है। रखवाली तो उन मोंगरों के पीछे बैठकर मैं करूँगा। ज्यों ही यह समझकर कि बूढ़ा सो गया है, कोई आया कि मैंने दबोचा।"

और वह हँसा।

"लेकिन इसके पास कपड़ा..."

"काफ़ी कपड़े हैं इसके पास बाबूजी।" और वह चला गया।

बूढ़े को फिर खाँसी का दौरा आया।

× × ×

मैं फिर काम में निरत हो गया; किन्तु काम मुझसे हुआ नहीं। मेरे समक्ष उन दोनों के स्वामी का चित्र खिंच गया। ठेकेदार गोपालदास—धन-दौलत, सम्पत्ति, सन्तान और निश्चिन्तता के कारण जिसके गाल इस पचास वर्ष की आयु में भी गुलाब की भाँति सुर्ख थे, अपने गर्म लिहाफ़ में लेटा, दमकती हुई अँगीठी से गर्म अपने कमरे में मज़े से गप्पें लड़ा रहा होगा या ताश अथवा शतरंज खेल रहा होगा...।

और यही कुछ सोचते-सोचते मेरी आँखें ऊँघने लगीं—खाना मैं ज़्यादा खा गया था, कपड़ों का बोझ मैंने लाद रखा था और कमरा मेरा गर्म था। मैं उठा। कुछ ज़रूरी काग़ज़, क़लम-दावात लेकर सोने के कमरे में छोड़ आया। सोचा कल तनिक सुबह उठकर काम करूँगा। फिर आकर दफ़्तर के कमरे को मैंने ताला लगाते हुए बूढ़े से पूछा कि वह चाहे तो मैं दफ़्तर का ताला खुला छोड़ दूँ ; लेकिन—"नहीं नहीं बाबूजी मेरे पास काफ़ी कपड़े हैं"—उसके यह कहने पर मैं ताला लगा अपने स्निग्ध, गर्म, छोटे से सोने के कमरे में चला गया। बिस्तर बिछा था, सिर्फ़ लिहाफ़ पर मैंने कम्बल और डाल लिया और कपड़े बदलकर मैं लेट गया। बिस्तर हिम की भाँति ठंडा था। मैंने पाँव सिकोड़ लिये और फिर उन्हें धीरे-धीरे फैलाया—कई तरह के विचार मस्तिष्क में घूमने लगे—बेरब्त, असंयत, लेकिन लिहाफ़ की गर्मी से आँखें भारी हो गईं और फिर बन्द भी हो गईं।

सोते-सोते, कभी माहीराम, कभी उस वृद्ध और कभी उनके स्वामी ठेकेदार की शक्लें मेरे सामने आने लगीं।

मैंने देखा कि माहीराम ने चोर पकड़ लिया है और वह उसे मारता-मरता पास के गाँव बेरीके तक ले गया है और सब गाँववालों को एकत्र करके उसने एलान किया है कि जो हमारी सब्जी चुरायेगा—उसको ऐसा ही दण्ड मिलेगा। इतना कहकर वह फिर चोर को पीटता है। चोर दयनीय निगाहों से उसकी ओर देखता है और मैं हैरान होता हूँ कि वह ठेकेदार के सिवा कोई नहीं—वही घुटा हुआ सिर, वही फूले गाल और वही चौरस नाक !

मेरी आँख खुल गई। देखा, पाँव से रज़ाई उतर गई थी। अधिक खा जाने के कारण छाती कुछ भारी थी और गला सूखा जा रहा था।

सिरहाने रखे हुए लोटे से पानी पीकर अच्छी तरह से लिहाफ़ लेकर, दोनों ओर से उसे पाँवों के नीचे करके फिर लेट गया। बाहर हवा मकान से टकरा रही थी और पेड़ उसके वेग का भरसक मुक़ाबला करते हुए जोश की शिद्दत से चिंघाड़ते थे—शो—शां—शां—और दूर बादल की गर्ज और बिजली की कड़क भी सुनाई देती थी। किन्तु गर्म होकर मेरा शरीर फिर शिथिल हो गया। मैं सो गया।

इस बार मैं देखता हूँ कि ज़ोर की वर्षा हो रही है। तेज़ हवा चल रही है। पाव-पाव भर के ओले पड़ रहे हैं। सब्जी सारी तबाह हो गई है। क्यारियों में पानी भर गया है। केवल उस पीले, सूखे, सिकुड़े बैंगन का पौधा खड़ा रह गया है। फिर वह बैंगन मेरे सामने बड़ा होना शुरू हो जाता है और मैं देखता हूँ कि उसकी शक्ल उस बूढ़े-सी बन गई है—घुटनों को छाती से लगाये, बाहों में लिये, वह सिकुड़ा, सिमटा, नंगा अपनी चोटी के सहारे लटक रहा है—उसी बैंगन के पौधे के साथ। ओले उसके सिर पर लगते हैं, तो भी वह उसी तरह लटका झूल रहा है।...

फिर देखता हूँ कि वह बैंगन का पौधा एक बड़ा ऊँचा, न जाने जामुन का, न जाने आम का पेड़ बन जाता है। लोगों की भीड़ उसके नीचे खड़ी शोर मचा रही है—बूढ़ा मर गया। फाँसी लगाकर मर गया...।

फिर मेरे कानों में सिर्फ़ 'मर गया'...'मर गया' की आवाज़ें आती हैं।

मैं जगा, देखा कोई ज़ोर-ज़ोर से किवाड़ खटखटा रहा है।

सिरहाने रखी हुई गर्म जुराबें पहन, सिर पर गर्म टोपी रख और कम्बल को अपने इर्द-गिर्द भली भाँति लपेटकर मैं उठा और किवाड़ खोले।

बाहर सेक्रेटरी साहब दूसरे व्यक्तियों के साथ खड़े थे। वर्षा हो रही थी, दूर दृष्टि की सीमा तक पानी ही पानी दिखाई देता था और दिन काफ़ी चढ़ आया था।

"क्या बात है?" मैंने पूछा।

"रात में आपके बरामदे में बूढ़ा मर गया।"

मैंने देखा—उसी काली-सी चारपाई पर अपने इर्द-गिर्द लिहाफ़ लपेटे

झुका-सा बूढ़ा पड़ा है, उसका लिहाफ़ वर्षा से बिलकुल भीग गया है और वर्षा ने सारे बरामदे को गीला कर दिया है।

"मैंने तो इससे रात में ही कहा था कि अन्दर..........." मैंने कहना शुरू किया।

सेक्रेटरी साहब बोले—"मैं चाय के लिए किचन दूध लेने चला था कि इसे भीगते हुए पाया। आवाज़ दी पर यह हिला नहीं, आकर देखा तो मालूम हुआ कि अकड़ गया है।" और उन्होंने ठेकेदार के आदमियों से कहा कि वे उसे उठाने की व्यवस्था करें।

× × ×

उसके दो दिन बाद मैंने किचन को जाते हुए अचानक माहीराम से कहा—

"ख़ुदा के लिए इस पीले-से बैंगन के पौधे को उखाड़ दो!"

मेरे स्वर की विचित्रता से माहीराम चकित-सा होकर मेरी ओर देखने लगा और फिर उसने कहा—

"बहुत अच्छा सरकार।"

कालू

कालू का रंग, शायद कहने की आवश्यकता नहीं, काला था, काला—जिसके साथ स्याह का विशेषण भी जोड़ देते हैं। हाँ उसकी आँखों के डेलों का रंग शर्बती था और गहरी भूरी पुतलियों के स्थान पर दो हलकी मिटियाले नीले रंग की पुतलियाँ टिमटिमाया करती थीं। टिमटिमाती ही थीं। दमकती न थीं, जैसे दूसरी स्वस्थ आँखों में दमका करती हैं, क्योंकि जन्म ही से वह अंधा था।

हाँ वह अन्धा था, किन्तु अन्धों का-सा हीन-भाव उसमें न था। ऊँचा लम्बा क़द, खुले अंग, सुगठित देह और हिंस्र ख़ूँख़ार आकृति। जब वह लेटा होता तो किसी शत्रु की क्या मजाल है कि उसके पास से बिना ग़ुर्राहट सुने गुज़र जाय। मुझे तो बहुत देर तक इस बात का भी पता नहीं लगा कि वह अन्धा है—जन्म-जात अन्धा।

× × ×

आज यद्यपि मैं ३० वर्ष का होने आया हूँ और भारत में जहाँ औसत व्यक्ति की आयु सिर्फ़ २३ वर्ष की है, तीस वर्ष का होना प्रौढ़ हो जाने के बराबर है, किन्तु इसके बावजूद मुझमें बचपन की कुछ आदतें बदस्तूर मौजूद हैं—इसी आदत को ले लीजिए—खाना खाने के बाद, जहाँ दूसरे लोग धोये जाने के लिए प्लेटों को यथास्थान रखकर जल्दी-जल्दी हाथ धोकर फ़ारिग़ होने को व्यग्र हो जाते हैं, मैं अपनी प्लेट से बची हुई रोटी उठाकर कौवों और कुत्तों को इकट्ठा कर लेता हूँ।

और फिर वह एक-डेढ़ रोटी एकदम कौवों और कुत्तों को डालकर मैं फिर अपने काम में व्यस्त नहीं हो जाता। यह सब मैं पुण्य अथवा धर्म का काम समझकर नहीं करता। मुझे इसमें रस मिलता है। रोटी के छोटे-छोटे टुकड़े करके हवा में उछालता हूँ और यदि कोई चंचल कौवा हवा में ही उसे दबोच ले या कोई चपल कुत्ता भूमि पर उसके गिरने से पहले ही उसे उचक

ले तो मुझे अपार ख़ुशी होती है।—किचन के बाहर जब खाने के पश्चात् पानी अथवा लस्सी का ठंडा गिलास पीने के बाद शरीर में सर्दी की झुरझुरी उठती है तो मैं हाथ में वही एक डेढ़ रोटी का टुकड़ा लेकर बाहर धूप में जा खड़ा होता हूँ और अपने बचपने की इस आदत को पूरा करने के साथ-साथ स्निग्ध, गर्म धूप का आनन्द ले लेता हूँ।

सामने इलियर की बाड़ के परे पतझड़ के कारण अनार की सूखी डालियों पर सर्दी से बचने के लिए पंख फुलाये सिकुड़ी-सी बैठी कोई बुलबुल अथवा चिड़िया सदैव यह कौतुक देखा करती है; गेहूँ की छोटी-सी पैली से परे चौड़े-चौड़े पत्तों को लिये हुए शटाला और नन्हें पत्तों को लिये हुए काली सेंजी धूप में खिल रही होती है; मेंढ़ों पर लगे हुए सरसों के पीले तथा मोंगरे के नीलाहट लिये हुए श्वेत फूल उचक-उचककर ताका करते हैं और धूप इस डाइनिंगहाल को, इसके इर्द-गिर्द सब्ज़ी के खेतों को, उसके परे कराह से समतल होती हुई धरती को और फिर ऊसर में खड़े एकाकी बबूल के विटप तथा दृष्टि की सीमा के पास आमों के घने बाग़ को अपने स्निग्ध आलिंगन में लिये होती है, रात का जमा हुआ कोहरा अज्ञात रूप से उड़ रहा होता है और मैं इस बिखरी, गर्म, स्निग्ध, स्नेहमयी धूप में रोटी के टुकड़े उछाला करता हूँ।

जिस प्रकार शव से गिद्धों का सम्बन्ध है, इसी प्रकार मनुष्य से कुत्तों का। किसी विराने में, जहाँ दूर-दूर तक विटप का निशान न हो, कोई लोथ फेंक दीजिए, दूसरे दिन ही अपनी लम्बी गर्दनें आगे को बढ़ाये, चीखते, झपटते गिद्ध उसके इर्द-गिर्द इकट्ठे हो जायँगे। यही हाल कुत्तों का है। किसी ऊसर में एक कुटिया डालकर मनुष्य रसोई बनाना शुरू कर दे। कुछ ही दिनों में उसे अपनी रसोई के बाहर एक दूसरे को भूँकते, नोचते, गुर्राते कुत्तों की आवाज़ सुनाई देने लगेगी।

मैं ही जब प्रीत-नगर में आया था, वहाँ एक भी कुत्ता न था, किन्तु अब मैं नित्य अपने इर्द-गिर्द एक फ़ौज की फ़ौज देखता हूँ—वह वेरके का शेर, जिसका रंग भूरा है, मात्र गर्दन पर सफ़ेदी है और जिसके भूरे मस्तक पर एक सफ़ेद-सा तिलक है और जिसके डेलों के इर्द-गिर्द हलका गुलबी रंग है और यदि मैं विशेष प्रयास न करूँ तो कव्वे तक को लुक्मा नहीं उठाने देता तथा

वह चितकबरा डग जो शायद चक मिस्त्री खाँ से आया था,—जिसकी पिछली टाँगों पर दुम के नीचे लम्बे-लम्बे बाल घुटनों तक चले गये हैं और जो प्रायः इस वैरोंके शेर से लोहा ले लेता है, तथा वह सफ़ेद शरीर किन्तु भूरे दाग़ों, तथा थोथनी पर स्याही और गहरी भूरी पुतलियोंवाला कुत्ता, जो हिंस्रता में उनसे किसी क़द्र भी कम नहीं तथा वह छोटा-सा बिल्लू, जिसे सरदार बख्शीश सिंह के प्यार ने यह नाम दे दिया है—फुर्तीला, छोटे खड़े पान-से कानों और लम्बी, पतली थोथनीवाला, जिसके पूर्वज अवश्य ही लूमड़ों की किसी श्रेणी से सम्बन्धित होंगे तथा वह अँग्रेज़ी-नज़ाद मिक्की जिसे एक मास्टर साहब बाहर से लाये थे और जो इन देशी कुत्तों के साथ मिलकर उन-सा ही आवारा हो गया है तथा वह दुम को पेट के साथ लगाये सिकुड़कर, महराब-सा बना परे-परे ही फिरनेवाला कुत्ता, जिसकी भूख, मालूम होता है, सुगन्धि से ही मिट जाती है और वह कुतिया जो पेट में सात-आठ बच्चों का भार लिये फिरती है और जिसकी भूख दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती है—ये सब और दूसरे दसियाँ मेरे इर्द-गिर्द इकट्ठे हो जाते रहे हैं।

इन्हीं में वह था, काला स्याह, जैसा कि मैंने कहा, सिर्फ़ उसके पंजे टख़नों तक चितकबरे थे अथवा घुटनों पर हल्की-सी सफ़ेदी थी। शक्ति में वह इस वैरोंके के भेड़िये से कम न था और इन सब कुत्तों में, शीघ्र ही मुझे उससे दिलचस्पी हो गई थी। मैंने देखा कि वह रोटी को ऊपर न झपट सकता था, किन्तु, यदि मैं रोटी को धरती पर फेंक दूँ तो उसकी आवाज़ पर लपकता था और फिर किसी का साहस न होता था कि उसे ले जाये। किन्तु जब मैं रोटी न फेंकता, बल्कि उन्हीं कुत्तों की ओर फेंकता, जो उन्हें उचककर झपट सकें तो वह चुप मेरे पास खड़ा दुम हिलाता और अपनी मटियाली-नीली पुतलियों को फिराता हुआ मेरी ओर ऐसी आँखों से देखता कि मेरे मन में कुछ दया-सी पैदा हो जाती और मैं अपने कौतुक को छोड़कर सारी की सारी रोटी उसके आगे फेंककर, पम्प पर हाथ धोने और कुल्ला करने चला जाता। सोचता कि आख़िर यह क्यों दूसरों की भाँति उचककर रोटी नहीं लेता और एक दिन, जब वह धूप में बरामदे की दीवार के सहारे चारों टाँगें ऊपर करके लेटा हुआ था, मैंने यही बात किचन के हेड रसोइए से पूछी।

'कौन यह सूरदास'—किचन की खिड़की से झाँककर मोहनसिंह ने पूछा।।

'सूरदास !'

'हाँ जी, यह बिलकुल अन्धा है।'

'और यह कहता हुआ मोहनसिंह खिड़की के बाहर कूद आया।

उसकी आवाज़ को सुनकर अथवा उसके रसोई की सुगन्धि में बसे हुए कपड़ों की बू पाकर कालू, करवट के बल उछलकर उसके पास आ खड़ा हुआ और दुम हिलाने लगा और उसके डेलों की मटियाले रंग की हलकी-नीली पुतलियाँ टिमटिमाने लगीं।

तभी वह चक मिस्री खाँ का डग भी वहाँ आ पहुँचा। उसकी बू पाकर कालू गुर्राया।

मोहनसिंह ने उसकी पीठ को थपथपाकर कहा, 'बस बचा।'

और कालू लपका।

'पुच-पुच, बस बचा, बस।'

और कालू डग के सिर पर जा सवार हुआ।

'नर कुत्ता है बाबूजी ?' मोहनसिंह ने अपनी खिचड़ी-सी डाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा, 'अन्धा तो है, पर शह दो तो शेर से लड़ जाय।'

× × ×

किन्तु यह शेर से लड़ जानेवाला निडर कालू अपने वक्ष में एक अत्यन्त भावुक दिल रखता है, इसका मुझे बाद में पता चला, जब पाँच-छः महीने बाद मैंने उसे पतीकी के साथ-साथ अथवा उसके पीछे-पीछे घूमते देखा।

× × ×

पतीकी एक छोटी-सी कुतिया थी। क़द की छोटी होने से बच्चों ने उसे यह नाम दे दिया था। पतीली-सी थोथनी, चुस्त खड़े कान, हल्का भूरा सफ़ेदी मायल रंग। कानों के पास बाल लम्बे और मुलायम थे। एक दिन सुबह-सुबह- मुझे उसके पीछे शीत में नगे पाँव कुहरे पर बड़ी दूर तक भागना पड़ा था। बात वास्तव में कुछ ऐसी न थी। मैं अकेला आदमी हूँ। कहने का मतलब यह कि मेरे पत्नी नहीं। कई वर्ष पहले उसका देहान्त हो गया था और इस विधुर जीवन में कई कारणों से छोटी-छोटी चीज़ों का मूल्य अधिक

बढ़ गया है। सुबह मैं व्यायाम कर चुकता हूँ तो मुझे तेज़ भूख लगती है। भूख शायद उपयुक्त शब्द नहीं—एक विचित्र प्रकार की चाह-सी मेरे अन्तर में सजग हो जाती है—गर्म-गर्म दूध के लिए। प्रायः मैं हाथ में खाँड की पुड़िया, एक-दो डबल रोटी के सूखे रस या चलग़ोज़े लेकर किचन में चला जाता हूँ। रसोइए से डेढ़-पाव अथवा आध-सेर गर्म-गर्म दूध ले लेता हूँ और फिर उस विशाल डाइनिङ्ग हाल के पिछली ओर बरामदे में खिली हुई धूप में बैठकर रस भिगो-भिगोकर खाता हूँ। अथवा चलग़ोज़े चटखाता और अत्यधिक गर्म होने के कारण एक चम्मच दूध फूँक मार-मारकर पीता हूँ अथवा सामने गोभी, शलगम और गाजरों की क्यारियों में सर्दी की ओर से बेपरवाह माहीराम को निरन्तर काम करते देखता हूँ और साथ-साथ दूध पीता रहता हूँ।

लेकिन गत वर्ष सर्दी कुछ अधिक पड़ी थी। पक्की दीवारों को पार करके शीत अंदर धँसा आता था। लिहाफ़ जो अन्दर से शरीर की हरारत के कारण गर्म होता ऊपर से हिम-सा ठंडा होता। मैं उन दिनों सुबह दूध पीने किचन में न जाता। धूप ही न निकलती थी, बारह-बारह बजे तक धुँधियाली छाई रहती थी। शिंगारासिंह जब गर्म दूध की बाल्टी लेकर कोठी-कोठी देता हुआ आता तो मैं उसी से ले लेता।

चूँकि सर्दी अधिक पड़ने लगी थी, इसलिए मैंने अपने व्यायाम की मात्रा भी अधिक कर दी थी और गर्म गर्म दूध के लिए वह आकांक्षा-सी भी मेरे मन में प्रबलतर हो गई थी और चलग़ोज़े तथा रस मुझे किसी विभूति से कम न दिखाई देते थे।

इन चार-छै आने पाऊंडवाले रसों को मैंने पहले कभी देखना भी पसंद न किया था और चलग़ोज़ों से भी मुझे सदैव नफ़रत सी रही है। हज़म नहीं होते—मैं ऐसा समझता आ रहा हूँ। लेकिन कभी स्वास्थ्य ऐसा भी होता है कि जटराग्नि पत्थर भी गला देती है। प्रीत-नगर लाहौर से ३० और पक्की सड़क से १० मील दूर है। खाना तो खैर, जो खाना चाहें, कम्युनिटी किचन के डाइनिंग हाल में जा सकते हैं, लेकिन और चीज़ें वहाँ स्टोर में मिलती हैं, और कभी जब वे समाप्त हो जाती हैं तो कभी-कभी प्रतीक्षा भी करनी पड़ती

है। बीवियोंवाले तो गाजर का हलवा, दाल के लड्डू, बर्फ़ी, बेसन और दसियों चीज़ें बना छोड़ते हैं, किन्तु मैं तो विधुर ठहरा, इसलिए मेरे निकट रस ही बड़ी प्रिय तथा कीमती चीज़ बन गये थे। और फिर एकाकी होने के कारण अत्यधिक काम करता हूँ। दिनों और तिथियों अथवा समय आदि का मुझे ज्ञान नहीं रहता और जब कोई चीज़ ख़त्म हो जाती है तो उसे लाना मुझे उसी समय याद आता है, जब कि प्रायः स्टोर बन्द होता है और कई बार जब खुला होता है तो वहाँ जाने पर पता चलता है कि वह चीज़ तो बहुत पहले की ख़त्म हो चुकी है। इसी लिए मैं अत्यधिक ज़रूरत की चीज़ें इकट्ठी ले रखता हूँ, और इन अत्यधिक ज़रूरत की चीज़ों में रसों एवं चलग़ोज़ों का नम्बर सबसे पहले आता है।

उस दिन चलग़ोज़े ख़त्म हो चुके थे और रस भी लगभग समाप्तप्राय थे और कदाचित् महीने के अन्तिम दिन होने के कारण स्टोर में भी ख़त्म हो चुके थे, इसलिए मैं दो के स्थान पर एक ही रस पर सन्तोष किया करता था।

शिंगारासिंह दूध लेकर आ गया, लेकिन मैं अभी कठिनाई से व्यायाम कर पाया था! मैंने रसों का लिफ़ाफ़ा निकाला, लेकिन तभी मुझे ख़याल आया कि दातुन तो मैंने की नहीं। नहाये बिना मैं चाहे कोई चीज़ खा लूँ, लेकिन दातुन किये बिना कोई चीज़ खाना मेरे लिए दुष्कर हो जाता है। किन्तु दातुन लेने जाऊँगा तो दूध ठंडा हो जायगा और मेरे पास तो स्टोव भी नहीं—यह सोच मैंने निर्णय किया कि आज ब्रश ही किया जाय। इस ख़याल के आते ही मैं रसों का लिफ़ाफ़ा वहीं छोड़, दूध का गिलास हाथ में लिये हुए स्नान-गृह में चला गया। गिलास खिड़की में रख मैं ब्रश करने लगा। ब्रश करने के बाद मुझे पता लगा कि ज़बान साफ़ करनेवाला (Tongue scraper) तो मैं अलमारी में ही छोड़ आया हूँ। और मैं कमरे की ओर बढ़ा। तभी मुझे कुछ गिरने की आवाज़ आई। देखा तो वह पतीकी चिक उठाकर और दरवाज़ा खोलकर अन्दर आ गई थी और उसने खुली आलमारी से रसों का लिफ़ाफ़ा नीचे गिरा लिया था। कई रस टूट गये थे और फ़र्श रसों के चूरे के कारण गन्दा हो गया था। टंग स्क्रेपर को वहीं अलमारी के खाने में रखकर मैंने रस उठाये और उन्हें लिफ़ाफ़े में डालकर अलमारी के सबसे ऊपर के

ख़ाने में रखा, फिर चूरे को इकट्ठा करके बाहर फेंका और फ़र्श साफ़ करके, टंग स्क्रेपर उठाकर और दर्वाज़े की चिटकनी लगाकर स्नानगृह की ओर बढ़ा। दरवाज़े में से ही मुझे लपर-लपर की आवाज़ आई, देखता क्या हूँ कि वही कम्बख़्त पतीकी खिड़की में रखे हुए गिलास में लपर-लपर ज़बान चला रही है। निश्चय ही गुसलख़ाने का बाहर का दरवाज़ा खुला होगा और वह उधर से आ गई होगी।

क्रोध से मेरी आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। टंग स्क्रेपर को वहीं फ़र्श पर फेंक, चप्पल मैंने उतारकर उसके मारी। उसके तो न लगी, अलबत्ता दूध का गिलास भर से फ़र्श पर आ रहा। क्रोध से अन्धा होकर मैं पतीकी के पीछे बाहर को भागा। भागते-भागते दूसरी चप्पल मैंने उतारकर हाथ में ले ली और यह भूल गया कि बाहर कोहरा जमा हुआ है।

वास्तव में इस पतीकी से मुझे और भी शिकायत थी। कुछ दिनो से मेरे कमरे के पीछे उसने बच्चे दे रखे थे और पिल्लों की च्याऊँ-च्याऊँ के कारण मेरी थोड़ी सी नींद भी हराम हो जाती थी। फिर अत्यधिक शीत के कारण वह अपने पिल्लों को लिये हुए मेरे ही बरामदे में आ जाती थी। जिस दिन ग़लती से पायदान बाहर रह जाता, उस दिन वे सब पिल्ले उस पर आ सोते और कई बार उसे गन्दा कर जाते।

अन्धाधुन्ध मैं उसके पीछे दाँत पीसता हुआ भाग रहा था। बच्चों के जन्म और अपनी बढ़ी हुई भूख को पूर्ण रूप से निवारण न कर सकने के कारण वह कुछ कृश-काय हो गई थी, किन्तु जान के ख़ौफ़ से वह च्याऊँ-च्याऊँ करती हुई दुम को पेट से लगाये भागी जा रही थी। मेरे पाँव सन्न हो रहे थे। तीखी हवा से मेरे नाक की कोठी दर्द करने लगी थी और कानों की कोरों पर चींटियाँ-सी चल रही थीं। किन्तु मैं प्रतिशोध की अन्धी भावना के कारण भागा जा रहा था—कई खेत, ऊसर, लॉन पार करके चक्कर खाकर, थक-हारकर वह वहीं मेरे मकान के पीछे अपने बच्चों के पास दीवार के साथ आकर दुबक गई। हाथ में उठाई हुई चप्पल मैंने ज़ोर से उसके दे मारी।—एक च्याऊँ करके उसने पेट दिखा दिया और चारों टाँगें ऊपर की ओर कर दीं।

मैंने दूसरी बार प्रहार करने के लिए चप्पल उठा ली थी, किन्तु उसकी दीनता को देखकर मैं उसे हाथ में ही लिये हुए मुड़ आया।

× × ×

इसी पतीकी से उस अन्धे कालू को प्रेम हो गया।

और कालू का प्रेम किसी युवा का बेपरवाह प्रेम न था, बल्कि उस प्रौढ़ का प्रेम था, जिसने अपनी इस प्रौढ़ता तक उसका स्वाद न चखा हो। ऐसी अवस्था के प्रेम में युवा-प्रेम सी बेपरवाही, हरजाईपन, अथवा बेवफ़ाई नहीं होती।

कालू अन्धा था। किसी यौवनमाती का साहचर्य्य उसे आज तक प्राप्त न हुआ था। जब भी ऋतु बदलती और कोई सहचरी अपने साथियों से खेलने, उनके शरीरों को सूँघने लगती अथवा उनकी गर्दनों में अपने अगले पंजे ढालकर खड़े होने में उसे आनन्द आने लगता तो फिर पाँच-पाँच छै-छै दिनों तक चकमिश्री खाँ से लेकर वैरोके, लोपोके, और भीलोवाल तक के कुत्ते उसके पीछे चलने लगते। जहाँ वह जाती, वहाँ वे जाते। उनके आगे आगे सदैव वह वैरोके का शेर, या वह चकमिश्री खाँ का डग या फिर वह श्वेत-रंग, पर खूंखार थोथनीवाला कुत्ता होता और इनका काम अपने पीछे आनेवालों को आगे बढ़ने से, प्रेयसी के शरीर को छूने का प्रयास करने से रोकना होता।

कालू ने प्रायः इन मुहिमों पर जाना छोड़ दिया था। बहार पर आई हुई सहचरियों की चाल में कुछ मस्ती, कुछ तेज़ी आ जाती थी। यह जानकर कि यह सब फ़ौज की फ़ौज उनके चाहनेवालों की है, वे मस्त अलबेली तीखी चाल से चलती। अन्धा कालू उनका साथ न दे पाता।

सूँघ-सूँघकर उसे चलना होता। एक बार इसी तरह बू के सहारे शरीर की आश्यकताओं से विवश होकर भागता हुआ वह एक गढ़े में जा गिरा था। सारा दिन वह पानी में खड़ा चीखता रहा था। रात के सन्नाटे में जब उसका करुण-क्रन्दन मोहनसिंह तक पहुँचा था तो उसने उसे निकाला था। पानी उतना गहरा न था, नहीं वह ख़त्म हो गया होता।

वह डाइनिंग हाल के पिछली ओर बरामदे में पड़ा धूप सेंकता ; खाने के

समय छीन झपटकर अपना पेट भर लेता। और यों भी किचन का हेड रसोइयाँ उसे 'बेटा' कहकर पुकारता था और खाने की उसे चिन्ता न हो सकती थी। और रात को तंदूर के नीचे गर्म राख में पड़कर सो रहता। उसकी इस जगह को छीनने की हिम्मत अभी उसके दोस्तों में से किसी को न थी।

लेकिन पिछली बहार में जब ऋतु बदली और सरसों के फूलों से खेत पीले हो गये, गेहूँ की बालियाँ लग आईं, आमों के बौर से वायु में सुगन्धि भर गई, वीराने में करीर की झाड़ियाँ लाल-लाल फूलों से भर गईं और तनिक देर से फलनेवाली बेरियाँ आँखों की शक्ल के बड़े हरे-हरे बेरों के बोझ से धरती में जा लगीं तो पतीकी (जैसा कि देहाती भाषा में कहा जाता है) कत्त में आ गई, मुश्क गई।

वास्तव में पतीकी किसी की पाली हुई तो थी नहीं और अवारा कुत्तों में मादा वर्ष में दो-दो तीन-तीन बार भी फल आती है। उसका शरीर भर गया था, बालों में चमक आ गई थी, कानों के बाल अधिक कोमल लगने लगे थे और चकमिश्री खाँ, बैरोके तथा लोपोंके के कुत्तों में जंग होने लगी थीं।

तभी जब एक रात वह तन्दूर के गढ़े में, जिसमें एक सूराख़ वास्तव में राख लेने के लिए बनाया गया था, किन्तु कालू के निरन्तर घुसकर बैठने से खुला हो गया था, सूराख के पास वह अपने अगले पंजों पर थोकनी रखे ऊँघ रहा था (दिन को वह शायद ज़्यादह सोया था, या अभी रात अधिक नहीं गई थी) कि उसकी नाक में कुछ ऐसी सुगन्धि आई कि उसके अङ्ग तन गये। उसने हवा में फिर एक बार सूँघा और एक सनसनी-सी उसके शरीर में दौड़ गई। वहाँ बैठे रहना उसके लिए कठिन हो गया। अपनी आँखों का अभाव, और उस अभाव के कारण गढ़े में गिर पड़ना उसे भूल गया। वह उठने को हुआ, लेकिन तभी उसे अपनी इस गुफा के बाहर अपने संगियों की भौं-भौं और बख-बख की आवाज़ सुनाई दी और वह मादक सुगन्धि उसे और भी पास, और भी समीप आती प्रतीत हुई। दूसरे क्षण उसने गर्म-गर्म साँस अपने नाक पर महसूस की। पतीकी बाहर की ठंड और अपने साथियों की ज़्यादतियों से तंग आकर उस सूराख में घुस आई थी।

वैरोके के शेर ने उसके पीछे जाने का प्रयास किया किन्तु एक तो जगह बिल्कुल न थी और दूसरे कालू की एक ही बख़ ने उसकी थोथनी का गोश्त नोच लिया!

उधर से हटकर उसने पतीकी के लिए कुछ जगह बना दी और स्वयं दहाने पर डटकर बैठ गया।

रात की कठिन सर्दी ने कुत्तों की गर्मी को ठंडा कर दिया और वे ऊँचे-ऊँचे चीख़ते पनाहगाहों में भाग गये और कालू पतीकी के साथ सटकर बैठ गया, हवा में बार-बार सूँघने लगा और प्रत्येक साँस से उसके शरीर में आनन्द की वह लहर दौड़ने लगी, जिससे वह अभी तक अनभिज्ञ था।

सुबह किचन के बाहर मोहनसिंह, शिंगारासिंह तथा महङ्गासिंह से कह रहा था।

'अरे इसको बैठे-बिठाये कहाँ से मिल गई यह?—दस बच्चे पैदा होंगे, बाल ब्रह्मचारी है यह कालू।'

और तीनों ठहाका मारकर हँसने लगे और वैरोके का शेर जो प्रातः ही आ गया था, वासना तथा ईर्ष्या की पीड़ा से ज़ोर-ज़ोर से चीख़ उठा।

× × ×

लेकिन कालू में, उस दिन से मैंने एक नया परिवर्तन देखा। उसने अपनी आरम्भ की जगह छोड़ दी और पतीकी के साथ-साथ फिरने लगा। मैं प्रायः उन्हें इकट्ठे देखता। पतीकी तनिक आगे होती, और कालू तनिक पीछे—इस तरह कि जहाँ पतीकी के अगले पाँव होते, वहाँ उसकी थोथनी होती और यद्यपि वह माप-मापकर पग धरता हुआ प्रतीत होता था, किन्तु फिर भी उसकी चाल में कुछ बेपरवाही-सी आ गई थी। गढ़े आदि का भी शायद उसे भय न रहा था। पतीकी के शरीर की सन्निकटता को महसूस करता हुआ वह उसकी गन्ध के सहारे बेखता चला जाता।

रात को यद्यपि ठंड होती, लेकिन दिन को गर्मी अधिक पड़ने लगी थी। शून्य में लहरिये से बनने लगते थे। आँखें धूप में टिकती न थीं और मैंने घर में खाना मँगाना शुरू कर दिया था। मेरा लड़का भी मेरे पास आ गया था। छोटा भाई भी था। घर में ठंडे फ़र्श पर चटाई बिछाकर किसी प्रकार के

शिष्टाचार के बिना हम खाना खाते तक पतीकी और कालू किचन से नौकर के पीछे-पीछे आकर सामने बरामदे में बैठ जाते—पतीकी सदैव तनिक आगे बैठती और कालू सदैव तनिक पीछे।

खाना खाकर मैं रोटी फेंकता। पतीकी झपटती। उसकी भूख, मालूम होता है, फिर तेज़ हो रही थी। उसका हिस्सा उसे देकर मैं रोटी का टुकड़ा कालू की ओर फेंकता। वह सूँघता और पीछे हट जाता और पतीकी को खा लेने देता।

अपनी प्रेमिका के प्रति ऐसा प्यार मैंने इन आवारा देशी कुत्तों में पहली बार ही देखा। वह स्निग्ध, वफ़ादार, त्यागमय प्यार—वैरोके और चक मिस्री खाँ के उन गुण्डों को मैंने एक दिन में दो-दो सहचरियों के पीछे घूमते देखा था।

किन्तु इसके बाद घटनाएँ जिस तरह हुईं, उन्हें याद करके मैं कई बार सोचा करता हूँ कि कालू कुत्ता ही था अथवा किसी पिछले जन्म का अतृप्त प्रेमी।

सन्ध्या को मेरी आदत है कि मैं सीधा स्नान-गृह जाता हूँ। मुँह-हाथ धोता हूँ और फिर कोई काम करता हूँ। प्रीति-नगर में स्नानगृहों और शौचा-लयों के दरवाज़े प्रायः खुले रहते हैं और मेरे तो प्रायः सब कमरों के दरवाज़े ही प्रायः खुले रहते थे। उस दिन जाने क्या काम था कि मैं कपड़े बदलने के लिए कमरे में जाने की अपेक्षा बाहर ही से स्नानगृह की ओर गया। गुसलख़ाने के बाहर कालू बैठा था। लगभग उसे लाँघता हुआ मैं अन्दर दाख़िल हुआ। देखा तो नाली के पास सीमेंट के खुरें पर पतीकी लेटी हुई है।

'हश्त-हश्त' मैंने उसे भागना चाहा।

वह तड़पकर उठी। उठने की उसने बहुत कोशिश की, पर उठ न सकी, तब मैंने देखा कि उसकी टाँग पर एक बहुत बड़ा, लगभग आधी टाँग तक फैला हुआ घाव था और तभी मुझे याद आया कि कालू आज दोपहर रोटी लेने नहीं आया और स्नान-गृह के बाहर बैठा है।

आवारा कुत्तों में परस्पर युद्ध होते रहते हैं। शत्रुताएँ और ईर्ष्याएँ भी

उनमें कम नहीं होतीं। शायद उस चक मिस्री खाँ के डग, अथवा उस वैर के के गुण्डे ने पिछली असफलता का बदला लिया था। बिल्कुल उसी तरह, जैसे उसके ही गाँव के दुल्ले ने ईर्ष्या-वश हो अपनी प्रेयसी हसना के नाक और कान काट लिये थे।

इसके बाद मैंने पतीकी को दो-तीन दिन वहीं पड़े, तड़पते, और दिन-प्रति-दिन क्षीण तथा कृश-काय होते तथा कालू को बाहर बैठे देखा और स्वयं मैं अपने पड़ोसी के गुस्लखाने में नहाता रहा।

फिर एक दिन, जब मैं दोपहर के समय खाना खाने के लिए घर आ रहा था, मैंने पतीकी को बाहर लॉन में अत्यन्त तीक्ष्ण धूप में तड़प-तड़पकर जान तोड़ते देखा। शायद शैतान बच्चों ने उसे उस ठंडी जगह से बाहर निकाल दिया था।

वहीं से मैं वापस सर्दार बख्शीशसिंह के पास गया और मैंने उनसे प्रार्थना की कि उस ग़रीब को इस असह्य पीड़ा से मुक्ति दिलायँ। सर्दार बख्शीशसिंह मेरे साथ आये। पतीकी का घाव बढ़ गया था और उसमें कीड़े पड़ गये थे—यह नहीं बच सकती, उन्होंने कहा और अपनी बन्दूक़ लाकर उन्होंने सदैव के लिए उसे उस कष्ट से मुक्त कर दिया।

× × ×

लेकिन कालू मुझे उस दिन के बाद फिर नहीं दिखाई दिया। न जाने वह कहाँ चला गया—क्योंकि इर्द-गिर्द के मज़दूरों से मैं पूछता रहता हूँ कि उन्होंने कभी अपने गाँव में कालू को देखा है—कालू को जो कि काला था और जिसके डेलों में गहरी शर्बती पुतलियों के स्थान पर अन्धी मिटियाली नीली टिमटिमाया करती थी। किन्तु मुझे उत्तर सदैव 'नहीं' में मिलता है। और कभी जब डाइनिंगहाल के बाहर मैं रोटियाँ उछालता हूँ तो मेरी आँखें सदैव दो टिमटिमाती हुई पुतलियों को देखने का विफल प्रयास किया करती हैं और कभी अँधेरी सर्द रातों में जब कुत्ते चीखते हैं, ऊँची लम्बी आवाज़ों में रोते हैं तो मुझे ऐसा लगता है, जैसे उनमें कहीं कालू की अतृप्त आत्मा भी क्रन्दन कर रही है।

३२४

मोटर अड्डे पर आकर रुकी। कुलियों की दुनिया में हलचल मच गई। बैठे हुए खड़े हो गये, खड़े दौड़ पड़े, मानो धन की वर्षा हो गई हो, कोई स्वर्गीय विभूति उनके मध्य में आ गिरी हो। मिनटों में मैले, फटे, जर्जर कपड़े पहने बीसियों कुली मोटरों को घेरकर खड़े हो गये। बहुतों ने अपने पीतल के नम्बर भी मोटर में फेंक दिये।

मोटर में बैठे हुए मिस्टर वाल्टन और उनका छोटा-सा कुनबा पीतल के टुकड़ों की उस वर्षा से घबरा उठा। दूसरे क्षण कुमारी वाल्टन तुनककर मोटर में खड़ी हो गई। उसकी युवा आँखों में क्रोध के डोरे दौड़ गये, रोष से मुख सुर्ख़ हो गया। उसने सब नम्बरों को उठाया और कुलियों के मुँह पर दे मारा। एक पीतल का नम्बर वाल्टन साहब की गोद में पड़ा था। उसे उठाते हुए ज्यों ही सुन्दर वाल्टन ने फेंकने के लिए हाथ उठाया कि एक कुली— सुन्दर, युवा, बलिष्ठ—दूसरों को हटाते हुए मिस वाल्टन के सामने आ खड़ा हुआ—कुछ बे-परवा-सा, कुछ उखड़ा-उखड़ा-सा, कुछ व्यथित-सा। युवती की सरोष आँखें उसकी करुण आँखों से चार हुईं। उसने नम्बर नहीं फेंका, और चुप अपनी जगह पर बैठ गई। कुली और समीप आकर मोटर के पास खड़ा हो गया। साहब अपनी पत्नी को लेकर दूसरे दरवाज़े से उतर गये।

कुमारी वाल्टन ने सिर से पाँव तक उस कुली को देखा और दूर तक निगाह दौड़ाई। इन चीथड़ों में लिपटे हुए आधी नंगी टाँगों और भुजाओंवाले कुलियों में, जिनके पैरों में सेर-डेढ़ सेर की बेडोल-सी चप्पल पड़ी हुई थी और घुटनों तक मैल चढ़ा हुआ था, जिनके चेहरों की आकृति शुष्क और सख़्त थी, और जिनकी आँखों के पपोटे धूल से स्याह हो रहे थे—इन सब कुलियों में कौन उस जैसा दिलेर, कौन उस जैसा सुन्दर, कौन उस जैसा बलिष्ठ था? उसने देखा, कुली की गोरी गोरी बाहों पर ज़्यादह बोझ उठाने के कारण मछलियाँ पड़ गई हैं और नीली नीली नसें फूल उठी हैं। उसके सिर पर

टोपी नहीं थी। गले में एक साफ़ लेकिन आस्तीन और गरेबाँ की क़ैद से स्वतन्त्र कुर्ता पड़ा हुआ था।

"तुमारा नाम ?"

"३२४"

"नम्बर नहीं, नाम।"

"हैदर।"

"हैडर ! कितना बोझ उठा सकेगा ?"

"बहुत काफ़ी मिस साहब।"

ड्राइवर ने दरवाज़ा खोला। कुमारी वाल्टन खट खट नीचे उतर गई।

"वह प्यानो उठा सकेगा ?" उसने मुस्कराते हुए कहा।

हैदर ने अपनी दृष्टि उस ओर उठाई और मुख पर बिखरे हुए बालों की लटों को परे हटाया। दूसरे मोटर में वह बड़ा प्यानो रखा था और चार-पाँच कुली उसे नीचे उतारने का प्रयास कर रहे थे।

उसने उत्तर दिया—"हाँ, उठा लूँगा।"

यह कहते समय उसे प्यानो के वज़न का ध्यान आया, किन्तु इसके साथ ही उसकी आँखों के सम्मुख अपने घर की बेबसी की तसवीर खिंच गई, साथ ही उसे अपनी बात का भी ध्यान आया। अब इनकार कर उस सुन्दर लड़की की नज़रों में दुर्बल बनना उसे स्वीकृत न था। वह आगे बढ़ा।

सुरीली तानें अलापनेवाला प्यानो, जिसके लिए कुमारी वाल्टन एक कमरा अलहदा कर दिया करती थी, उतारकर धरती पर रख दिया गया और दो-तीन 'हातो'* उसे उठाने के लिए तैयार हुए।

"इसे यह कुली उठायगा," कुमारी वाल्टन ने आगे बढ़कर कहा। साहब ने हैदर पर नख से शिख तक दृष्टि डाली और बोले—"यह अकेला।"

"हाँ।" और मुस्कराती हुई हैदर की ओर देखकर कुमारी वाल्टन बोली—'क्यों उठायगा अकेला ? हम ईनाम बी डेगा।"

हैदर का सीना फूल उठा—"हाँ, मिस साहब।" हाँ कहकर न कहना जवानी ने नहीं सीखा।

---

* शिमला मे काश्मीर और नाहन के कुली 'हातो' कहलाते हैं।

"टीन माईल जायगा ?"

"ले जाऊँगा ।"

"हम टुम्हें बहुट ईनाम डेगा ।" और उत्सुक नज़रों से कुमारी वाल्टन उस बलवान् कुली की ओर देखने लगी। देखते देखते हैदर ने प्यानो के इर्द-गिर्द रस्सा लपेट लिया। जो 'हातो' उसे उठाने के लिए आगे बढ़े थे, पीछे हट गये। दो आदमियों की सहायता से हैदर ने प्यानो पीठ पर लाद लिया। उसकी कमर दोहरी हो गई, माथे पर पसीना आ गया। अपनी छोटी-सी लठिया के सहारे वह चल पड़ा।

"मर जायगा ससुरा !" एक हातो ने कहा—

पों पों करती हुई दूसरी मोटर-गाड़ी आ खड़ी हुई और सब उसकी ओर दौड़ पड़े।

कुमारी वाल्टन वहाँ खड़ी की खड़ी रह गई। वह सोच रही थी—'इतना बड़ा प्यानो, जिसे चार आदमी कठिनाई से उठा पाते हैं, इस अकेले हैदर ने उठा लिया। यह योरप में होता, तो बोझ उठाने का रिकार्ड मात करके सहस्रों रुपये कमा लेता। उसके युवा-हृदय में इस कुली के लिए सहानुभूति का समुद्र उमुड़ आया। परन्तु यह सहानुभूति उसके फटे कपड़ों, उसके व्यथित मुख, उसकी बेबसी को देखकर नहीं पैदा हुई थी। वह उस सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखती थी, जहाँ ये बातें सहानुभूति ख़रीदने के बदले उपेक्षा मोल लेती हैं। पर बहादुर से, सुन्दर से हमदर्दी हो जाना स्वाभाविक है और फिर युवा रमणी के हृदय में—वह हृदय चाहे अँग्रेज़ रमणी का हो अथवा भारतीय का।

रिक्शा उसके समीप आकर खड़ी हो गई। वाल्टन साहब ने तीन रिक्शाओं के लिए आर्डर दिया था। कुमारी वाल्टन सबसे अगली रिक्शा में बैठ गई, उससे पिछली में उसकी माँ। सबसे अन्तिम रिक्शा में साहब स्वयं बैठे। पाँच-सात कुली दूसरा सामान उठाकर साथ-साथ चलने लगे।

वाल्टन साहब रिटायर्ड इञ्जीनियर थे। पेन्शन मिलती थी। कुनबा भी बड़ा नहीं था, मज़े से बसर होती थी। शिमले में उन्होंने दो-तीन कोठियाँ बनवा ली थीं। किराया भी आ जाता था। उनकी निजी कोठी का नाम

'कैनमोर काटेज' था। वह छोटे शिमले से ज़रा दूर एक सुरम्य जगह में बनी हुई थी। आगे छोटी-सी वाटिका थी। अपना फ़ुर्सत का समय वाल्टन साहब भाँति भाँति के पौधे लगाने में बिताते थे। उन्हें इसमें बड़ा आनन्द मिलता था। कभी कभी उनकी पुत्री भी इस काम में उनका हाथ बँटाती। उसे अपने ही अनुरूप देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती। एक माली भी रखा हुआ था, परन्तु वह सर्दियों में बग़ीचे की देख-भाल करता। गर्मियों में साहब स्वयं दिल्ली से आ जाते; तब उनका काफ़ी समय अपने बग़ीचे में ही बीतता।

कुमारी वाल्टन को प्यानो बजाने में कमाल हासिल था। जहाँ एक-दो महीनों के लिए जाना होता, वहीं उसे वह ले जाती। वह प्यानो उसने ख़ास तौर पर विलायत से मँगवाया था। साधारण प्यानो से वह तिगुना बड़ा था। सुरीला इतना था कि जब कुमारी वाल्टन का मीठा स्वर उससे मिल जाता, तब सोने पर सुहागा हो जाता! सर्दियों में यह छोटा कुनबा देहली चला जाता और गर्मियों में शिमले आ जाता।

हैदर साँस लेने के लिए रुका। शिमले में सड़कों के किनारे सीमेंट के चबूतरे बने हुए हैं, ताकि कुली लोग वहाँ बोझ रखकर सुस्ता लिया करें। कुमारी वाल्टन अपने विचारों में मग्न थी। हैदर को रुकते देखकर रिक्शा से कूद पड़ी। साहब और उनकी पत्नी उससे बहुत आगे निकल चुके थे। उसने हैदर से कहा—"क्यों ठक गया, कहा था मत उठाओ। तुम ठक जायगा, लेकिन माना नहीं।"

हैदर बिना विश्राम किये फिर चल पड़ा। किसी युवती के सामने थकने का नाम लेना और फिर बहादुरी का दम भरना!

"शाबाश!" कुमारी वाल्टन उसके साथ चलती हुई बोली—"टुमने हमको बहूट खूश किया। अगर टुम आराम लिए बीना इसे बँगला टक ले गिया तो हम टुम्हें बहूट ईनाम डेगा, जो माँगेगा वह डेगा।"

बायें हाथ में लठिया पकड़कर उसके सहारे रुककर हैदर ने दायें हाथ से मस्तक से पसीना पोंछा और चल पड़ा। उसके पाँव मन-मन भर के हुए जाते थे। उसके समस्त शरीर से पसीना छूट रहा था। अपनी ज़िन्दगी में उसने अभी तक इतना बोझ नहीं उठाया था। किन्तु मिस साहब प्रसन्न हो

गई थीं। यदि वह इस प्यानो को वहाँ तक पहुँचा देगा, तो वे अवश्य ही उसे दो-तीन रुपए देंगी ! हो सकता है, उसे अपने यहाँ नौकर ही रख लें। तब तो उसका जीवन बन जाय, वह अमीना को सुख दे सके। अपनी उस प्यारी अमीना को, जिसने उसके लिए अमीरी से ग़रीबी मोल ली थी ; अपने धनवान् माता-पिता को छोड़कर सुख-भोग को लात मारकर जो उसके साथ हो ली थी और जो उससे कितनी मुहब्बत करती थी। उसे सब याद था—वह दिन जब लाहौर में स्टेशन से सामान उठाकर वह एक गली के बड़े-से मकान में ले गया था और बुरक़े को उठाकर हश्र बरपा कर देनेवाली दो आँखों ने उसे देखा था। उसे याद था कि किस तरह वे आँखें उस पर मेहरबान हो गई थीं, किस तरह उसे आँखों ही आँखों में मुहब्बत का सन्देश मिला था, किस भाँति उसने कुली का काम छोड़ वहाँ उसी गली में पान की दुकान की थी। किस तरह अमीना उसके साथ भाग आई थी और किस तरह क़ैद से बचाने के लिए उसने भरी अदालत में उसके साथ रहने का प्रण किया था। सब—वे दिन, वे रातें, वे घड़ियाँ, वे पल, मुहब्बत के, प्यार के, दुःख के, सन्तोष के—कल की बात की नाईं याद थे। वह कमाता था अमीना को सुख देने के लिए, अपनी उसे कुछ परवाह न थी। वह सोचता, यदि मेरे पास कुछ रुपया होता, कुछ थोड़ा-बहुत ही, तो अमीना को लेकर फिर कहीं दूर किसी छोटे से क़स्बे में कोई दूकान कर लेता। लेकिन रुपया आता कहाँ से ? अमीना के साथ भागने के बाद उसकी रही-सही पूँजी भी उड़ गई थी, और विवश होकर उसे फिर श्रमजीवी बनना पड़ा था। वह दिन में दो रुपए कमा लेता। उसके शरीर में शक्ति थी, भुजाओं में बल था। कश्मीर और नाहन के हातो भी उसे बोझ उठाते देखकर दङ्ग रह जाते। अमीना कहती—"मुझे तुम्हारे साथ सूखी रोटी पसन्द है। तुम बहुत कष्ट न सहा करो।" परन्तु वह उसकी बातों पर कान न देता। उसे एक ही धुन थी, एक ही लगन थी, कुछ रुपया-पैसा पैदा करना और बस—उसके बाद इस पेशे को सदैव के लिए छोड़ देगा। अमीना उसके कपड़े धो देती। जब वह सन्ध्या को थक कर आता, तब उसके पाँव दबाती। सहस्रों व्यय करने पर भी ऐसी पतिपरायणा स्त्री न मिलती। वह उसे पाकर भी सुखी न था। जब वह देखता कि उसकी

अमीना उस अँधेरे में सारा दिन बन्द रहने से पीली हुई जा रही है, तब उसका हृदय ख़ून के आँसू रोता। वह उसे शीश-महलों में, मरमर के प्रासादों में रेशमी वस्त्रों से आवृत रखना चाहता था, पर उसकी आकांक्षाएँ उस बेपर पंछी की आशाओं की तरह थीं, जो गहरे खड्ड में गिरकर ऊपर पहाड़ की चोटी पर उड़ना चाहता हो। हैदर ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा। बोझ के कारण उसका सीना दुख उठा। उसे ज्ञात था, इस समय जब वह बोझ उठाये चला जा रहा है, अमीना भी काम करती होगी। उसने ग़लीचा बुनना सीखा था। दोनों कुछ रुपया पैदा करना चाहते थे, जिससे कोई काम कर सकें। उन्हें आशा थी कि इस वर्ष के बाद तक उनके पास छोटा-मोटा व्यवसाय आरम्भ करने के लिए पर्याप्त धन हो जायगा।

हैदर सोच रहा था—'कौन जाने यह लड़की प्रसन्न होकर मुझे अपने यहाँ किसी काम पर नौकर रख ले? उस सूरत में मेरी अभिलाषा बहुत जल्दी पूरी हो जायगी। अभी हमें कमरे का किराया भी देना पड़ता है और ख़र्च भी बहुत होता है। फिर रोटी और रहायश का ग़म न रहेगा। थोड़ा बहुत सरमाया जमा कर लेंगे और तब किसी छोटे-से नगर में जाकर बसेंगे। मैं हूँ और अमीना का अटूट प्रेम और बस। इस भाँति यह जीवन-लीला समाप्त हो जाय।' पर यह प्यानो वहाँ पहुँच भी सकेगा? यदि वह सुस्ता लेता, तो शायद पहुँचा भी देता। परन्तु बिना साँस लिये तीन मील चलना सर्वथा असम्भव है। मोटरों के अड्डे से सड़क पर आते-आते ही उसके प्राण सूख गये थे। उसका शरीर शिथिल हो रहा था। उसने सोचा, 'प्यानो रख दूँ।'

उसी समय कुमारी वाल्टन ने कहा—"शाबाश हैडर, शाबाश! टुम प्यानों को बँगला टक पहुँचा गया, टो बहुट इनाम डेगा। डस रुपया डेगा, बीस रुपया डेगा।"

सुनकर हैदर के मुर्दा शरीर में जान पड़ गई। आशा ने फिर संजीवनी का काम किया—वह फिर चल पड़ा।

वह रिक्शा छोड़कर उसके साथ चली आ रही थी। तेरह-चौदह वर्ष की आयु, पतली-सी कमर शरीर के साथ चिपटा हुआ फ्राक, लम्बा क़द, ऊँचो

एड़ी के कारण उठे हुए छोटे-छोटे पाँव, गोरी बाँह, तीखे नक़्श और मुख पर उत्सुकता। इस तरह चली आ रही थी, मानो हैदर को नहीं, उसे ही इनाम जीतना हो। वह सोचती, इतना बहादुर भी कहाँ। यह पुरुष जहाँ भी जायगा, नाम पायगा। सेना में भरती हो जाता, तो अब तक कप्तान बन जाता। फ़ुटबाल खेलता, तो कोई उसका मुक़ाबला न कर सकता। इतना बोझ! इसे उठाना ही बड़ा काम है, फिर इसे उठाकर तीन मील चलना! उसने हैदर की ओर एक स्नेह भरी दृष्टि डाली। वह उसे अपना सब कुछ दे दे। इस बहादुर कुली पर निसार होने के लिए उसका हृदय बेताब हो उठा।

एक साहब थे ब्राउन। कुमारी वाल्टन की मोहब्बत का दम भरते थे। उसे ख़याल आया यदि उनको यह प्यानो उठाना पड़े, तो उनका कचूमर ही निकल जाय। इस विचार के आते ही उसके लाल अधरों पर मुसकराहट दौड़ गई।

"शाबाश हैडर!" उसने हैदर को रुकते हुए देखकर कहा और फिर ध्यान में मग्न हो गई। कभी-कभी कोई व्यक्ति हैदर को अकेले इतना बड़ा प्यानो उठाये और अँग्रेज़ युवती को उसके साथ इस भाँति जाता देखकर आश्चर्य से एक क्षण के लिए खड़ा हो जाता और फिर अपनी राह चला जाता।

छोटे शिमले का डाकख़ाना आ गया था। हैदर की टाँगें जवाब देती हुई प्रतीत हुईं, उसे अपने हवास गुम होते हुए दिखाई दिये। बस इससे आगे वह न जा सकेगा। इतनी दूर तक ही वह कैसे आ गया। वह इसी पर विस्मित था। अब आगे न जाया जायगा। उसके पाँवों में शक्ति ही नहीं, उसके शरीर में जान ही नहीं। उसकी आँखें बन्द-सी हुई जाती थीं। उसे अपने स्वप्नों के समस्त गढ़ गिरते हुए प्रतीत हुए।

उस समय कुमारी वाल्टन की मीठी, मधुर, मादक सहानुभूति से युक्त, जीवनदायिनी आवाज़ सुनाई दी।

"हैडर थक गया? बस, दो फ़र्लाङ्ग और टुम जीट जायगा," लेकिन हैदर नहीं हिला।

कुमारी वाल्टन को अपनी कल्पनाओं का प्रसाद गिरते दिखाई दिया। यदि हैदर वह बाज़ी न जीत सका, तो यह सब श्रद्धा, जो उसके हृदय में उसके लिए पैदा हुई थी, उड़ जायगी। उसने फिर एक बार कहा—

"हैडर, हम तुम्हारे लिए सब कुछ करेगा, तुम्हें सेना में भर्ती करा डेगा, टुम्हें नौकर रख लेगा, टुम्हें प्यार करेगा। बस, डो फर्लाङ्ग, बक अप, बक अप !" और हैदर चल पड़ा, जैसे कुमारी वाल्टन के स्वर में बिजली का असर हो।

बँगला आ गया। माली और नौकरों ने दौड़कर उसका स्वागत किया। एक ने हैदर को बोझ तले दबे हुए देखकर उसे सहारा देना चाहा। हैदर ने सिर के इशारे से उसे हटा दिया। उसे बँगले के आ पहुँचने का मद्धिम-सा ज्ञान था और अब यहाँ तक आकर अपने किराये पर पानी नहीं फेरना चाहता था। उसकी टाँगों में स्फूर्ति आ गई। वह तेज़ चलने लगा। मंज़िल के समीप पहुँचकर पथिक की चाल तेज़ हो भी जाती है।

बँगले पर पहुँचकर कुमारी वाल्टन सीधे उस कमरे में गई, जो प्यानों के लिए रिज़र्व था। हैदर विजयी की भाँति सीधा खड़ा हो गया, उसका मुख चमक उठा। साहब दूसरे कमरों में असबाब रखवा रहे थे ! कुमारी वाल्टन ने नौकरों को इधर-उधर जाकर उनका हाथ बँटाने को कहा। उसी क्षण हैदर का सिर चकराया और वह कोच पर बैठ गया।

अपने रेशमी रूमाल से उसके मुख का पसीना पोंछते हुए कुमारी वाल्टन ने क्षणिक आवेश के वश उसके गोरे मस्तक को चूम लिया और गाउन से बटवा निकालकर बीस रुपए के नोट उसके हाथ पर रख दिये। किन्तु नोट गिर पड़े। कुमारी वाल्टन ने सशंक नेत्रों से उसकी ओर देखा। हैदर की आँखें खुली हुई थीं और उसका शरीर अकड़ गया था।

कुमारी वाल्टन हैरान-सी भौचक्की-सी, निर्निमेष नज़रों से उसकी ओर ताकती रह गई।

उस समय नौकर ने एक पीतल का टुकड़ा अन्दर फेंका।

"मिस साहब ! यह नम्बर रिक्शा में ही रह गया था।"

कुमारी वाल्टन ने दौड़कर उठा लिया। मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा था "३२४"। "पुअर हैडर" कहती हुई उसने दीर्घ निःश्वास छोड़ी और उसकी आँखें सजल हो गईं।

———

सपने

...और मैं सदैव तीन लाख के स्वप्न देखता हूँ। जागते समय और प्रायः चलते समय मैं ये स्वप्न देखा करता हूँ। मैंने आज तक कभी लाटरी का टिकट नहीं ख़रीदा, फिर भी मुझे अचानक लाटरी ही से तीन लाख रुपये मिल जाते हैं। और मैं चलते-चलते, प्रायः चिलचिलाती धूप और प्रायः बहते झक्कड़ को भूलकर, किसी सुन्दर घाटी में अपना एक 'एकान्त-नीड़' बनाने में निमग्न हो जाता हूँ। मेरे इस छोटे-से नीड़ में एक छोटा-सा पुस्तकालय होता है। पढ़ते-पढ़ते थक जाने पर खेलने के लिए पिंग-पाँग, कैरम, बैगाटल और दूसरी खेलें होती हैं। सैर करने के लिए छोटी-सी बाटिका होती है। मैं किसी सुन्दर भोली-भाली लड़की से मुहब्बत करता हूँ। रिश्तेदारों के लिए काफ़ी रुपया छोड़कर वहीं अपने उस नीड़ में जा बसता हूँ। एकान्त से मन ऊब न जाये, इस विचार से एक ऐसा ही बँगला जिस पर विनम्रता से 'घोंसला' लिखा होता है, नगर के किसी कोने में बनाता हूँ, गुज़ारे के लिए बैंक से काफ़ी सूद मिलता है और अपने इन दोनों आशियानों में जीवन के दिन व्यतीत करता हुआ साहित्य-सेवा में निरत रहता हूँ। किताबों पर किताबें लिखता हूँ और मेरा नाम भारत की सीमाओं को पार...किन्तु मेरा यह स्वप्न-चित्र कभी पूरा नहीं उतरता; क्योंकि मैं ब्योरों (details) में उलझ जाता हूँ—मेरे पत्नी है, बच्चे हैं, और फिर भाई-बहनें और...और...

और असौज की इस पूर्णमासी को जब चाँद की किरणों में हलका-सा सुनहलापन था और तारकोल की सड़क कहीं-कहीं मरीचिका-सी चमक जाती, मैं चलता-चलता ऐसे ही 'जागते के स्वप्न' में खो गया था।

× × ×

मैं सब्जीमंडी से कुछ पैसे (और अगर मिल सके तो कुछ अधेले) लाने के लिए घर से निकला था। अभी अचानक मालूम हुआ था कि

आज चाँद ग्रहन है और मा ने कहा था कि कुछ पैसे लेते आना, कोई मँगता भिखारी ही आ जाता है।

मुझे भिखारियों से चिढ़ है—गन्दे, कुरूप, दुर्गन्ध-युक्त भिखारियों से—उनकी सूरत मेरी सौन्दर्य-भावना को ठेस पहुँचाती है, या उन्हें देखकर मेरे मानस-पट से ब्रह्माण्ड के सौन्दर्य की रेखाएँ धुँधली पड़ने लगती हैं, या फिर इन कीड़ों की भाँति रेंगनेवाले मानवों को देखकर मैं संसार की विपमता की बात सोचने लगता हूँ। मैं ठीक तरह कुछ नहीं कह सकता, एक कारण यह भी हो सकता है कि किसी भिखारी को देखते ही मेरी आँखों के सामने कई घिनावने दृश्य एक साथ घूम जाते हैं...

...मैं हलवाई की दुकान पर बैठा होता हूँ, मुझे सुबह-सुबह पेड़े और दही की लस्सी पीने की आदत है, जब तक लस्सी मेरे सामने बनकर नहीं आ जाती, मुझे सन्तोप नहीं होता। चाहता हूँ हलवाई से कह दूँ 'और अधिक न मथो', किन्तु यदि दही को ठीक तरह न मथा जाये तो मलाई नहीं मरती और छिद्दी सारा मज़ा किरकिरा कर देती है। और यों भी यदि लस्सी में पेड़े मिलाये जायँ तो अधिक देर लगती है। राम-राम करके कहीं लस्सी तैयार होती है। गिलास के ऊपर मक्खन की तह और लस्सी की सफ़ेद झाग से आँखों को ठंडक-सी पहुँचने लगती है। हलवाई उस पर केवड़ा छिड़ककर मक्खन पर चमचा रख देता है। लेकिन अभी गिलास को ओठों से नहीं लगाता कि पीछे से गर्दन पर हवा का हलका-सा झोंका लगता है और कानों में अगनित मक्खियों की भिनभिनाहट की भाँति दर्द-भरा-सा स्वर गूँजने लगता है, 'एक पैसा दिलवा दो बाबू, तुम्हारी नौकरी बनी रहे...'

विवश हो एक बार उधर देखकर आँखें फिरा लेता हूँ। लेकिन लस्सी कंठ के नीचे उतरने से इनकार कर देती है—रूखे, शुष्क, उलझे बाल, आँखों में चीपट, दाँतों पर पीली, मैले गन्दे चीकट कपड़े—एक भिखारिन पंखी से हवा करती हुई कहती है—'बाबू एक पैसा...' केवड़े की गन्ध मर जाती है और सुस्वादु लस्सी के घूँट विप के घूँट बन जाते हैं...

...सख्त भीड़ से किसी न किसी तरह गुज़र कर अपने बच्चे को सँभाले, अपनी पत्नी और कुली दोनों पर निगाह रखता हुआ मैं स्टेशन के प्लैटफ़ार्म

से निकलता हूँ और ताँगेवालों के नर्ग़े में फँस जाता हूँ—कोई ट्रङ्क खींचता है ; कोई बिस्तर ; कोई गठड़ी ; बच्चा घबराकर रोने लगता है ; पत्नी परेशान-सी खड़ी रह जाती है ; गर्दन और माथे का पसीना पूछते हुए मैं ताँगेवालों से झगड़ता हूँ कि—'तेरी सुन्दर सूरत पर मर जाऊँ रे बाबू', 'तेरी कटीली ऐनक पर मर जाऊँ रे बाबू !' का गीत गाती हुई, टखनों से ऊँचा लहँगा और कटी-फटी बंडी पहने एक लड़की मेरे इर्द-गिर्द घूमने लगती है। और 'माई तेरा बच्चा जीवे !' 'माई तेरा मालिक जीवे !' की तान लगाती हुई उसकी बहन मेरी पत्नी को घेर लेती है। मैं ज़ोर-ज़ोर से चीखता हूँ ; लेकिन ताँगेवालों के कोलाहल के ऊपर से कहीं मेरे कानों में ये आवाज़ें अनवरत आती रहती हैं—'तेरी सुन्दर सूरत...' और फिर 'माई तेरा बच्चा...'

...और कभी-कभी कोई नंग-धड़ंग लड़का पेट पर हाथ मारता हुआ—'बाप मर गया क़िस्मत फूटी !' की सदा लगाता, तपती धूप में, मेरे ताँगे के पीछे भागता है, मैं ताँगे को तेज़ चलाने की आज्ञा देता हूँ, वह भी तेज़ हो जाता है...

...और कभी जब मैं दोपहर को काम-काज से छुट्टी पाकर, चाँदनी चौक से होता हुआ घर को लौटता हूँ, तो प्रायः मुझे ऐसा लगता है कि मैं किसी सूने, निस्तब्ध बाज़ार से गुज़र रहा हूँ, मुझे चाँदनी चौक की भीड़-भाड़ तड़क-भड़क कुछ भी दिखाई नहीं देती। मैं देखता हूँ—कोई वस्त्रहीन अन्धा, वर्षों से स्नान से वंचित, भिखारी, किसी बन्द दूकान से तख़्ते से उठकर, रुक-रुककर पग धरता हुआ किसी निरंजन के पेड़ की जड़ों में पेशाब करने बैठ जाता है। या फिर कजली के पेड़ के नीचे कोई अधेड़ उम्र की भिखारिन अपने रूखे उलझे बालों को अपनी मैल से काली पड़ जानेवाली अँगुलियों की कंघी से सुलझाती है। और शालामार टाकीज़ के तनूरों और खोंचेवालों के इर्द-गिर्द भूखे कुत्तों की तरह बैठे हुए भिखारी और उनके बच्चे सतृष्ण नेत्रों से रोटी के टुकड़ों की ओर देखते हैं...

अन्तरिक्ष पर छाई हुई धूल, जैसे ख़ुश्क और गर्म शामों की उदासी और घुटन में वृद्धि कर देती है, इसी प्रकार ये सब दृश्य मेरे व्यथित और उदास मन को और भी व्यथित और उदास कर देते हैं।

और मैं किसी भिखारी को पैसा नहीं देता। एक को एक पैसा देकर और बीसियों को इनकार कर देना मेरे लिए मुश्किल है। और फिर एक ताँबे का पैसा, पाव-आध-पाव आटा या चने के चन्द दाने वर्ग-गत असमता के इस रोग का इलाज भी तो नहीं...

और मैं स्वप्न देखा करता हूँ...तीन लाख के स्वप्न...इस दुर्गन्ध, कुरूपता, असमता, बेकारी, ग़रीबी, गन्दगी, विपन्नता, भूख और बेचारगी से दूर...रूप, सौन्दर्य, धनवैभव, आराम और उल्लास के स्वप्न...

लेकिन मा तो ऐसे स्वप्न नहीं देखती। अपनी वर्तमान दशा पर ही वह सन्तुष्ट है। द्वार पर आ जानेवाले हरेक भिखारी के लिए उसके भंडार में कुछ न कुछ मौजूद है—फिर वह बासी रोटी हो या एक कटोरी भर आटा। इसी लिए जब कुछ देर पहले छोटे ने आकर बताया कि आज चाँद ग्रहन है और नरेन्द्र ने बाहर से आकर इस बात का समर्थन भी कर दिया कि दस अड़तालिस पर ग्रहण लगेगा, तो मा ने जल्दी का शोर मचा दिया कि खाना तत्काल ख़त्म किया जाये ताकि वे नहाकर पूजा के लिए तैयार हो जायँ। हमने नहाये बिना जल्दी-जल्दी रोटी ख़त्म की, तब मा ने दिल्ली और दिल्ली के इस एकान्त कोने में बने हुए क्वार्टरों को कोसते हुए कहा कि इस निगोड़ी जगह दिन, वार, तीज त्योहार का कुछ भी पता नहीं चलता, आज चाँद ग्रहन है यदि कहीं इस बात का पहले पता लग जाता तो रसोई आदि से निपटकर जमुनाजी में जाकर दो डुबकियाँ ही लगा लेते।

डुबकियाँ...मैं मन ही मन हँसा था...आजीविका के भँवर ही क्या कम हैं कि जो किसी दूसरे दरिया में जाकर डुबकियाँ लगाने की ज़रूरत महसूस हो। इसके पानियों से उभरें तो कहीं और जाकर गोते लगाने की उमङ्ग पैदा हो।

और कुल्ली आदि करके मैं बाहर जाने को तैयार हुआ था। इतनी चाँदनी थी कि घर में बैठे रहना गुनाह करने के बराबर मालूम होता था। फिर कुछ तबीयत भी भारी थी—मेरी भूख के सम्बन्ध में अपने अनुमान के अनुसार मा ने खाना खिलाया था—ख़याल था कि सब्जी मंडी से खारी या खारी-मीठे सोडे की एक बोतल ही पी आऊँगा, जब चलने लगा तो मा ने कहा था कि वहीं से कुछ पैसे या अधेले भी लेते आना।

मैंने कहा था, 'बटुए में पाँच-छै आने हैं।'

माँ बोली थीं, 'आने नहीं पैसे या अधेले चाहिए। कोई मँगता भिखारी ही आ जाता है।'

× × ×

असौज की पूर्णमासी का सुनहरी-मायल-सफ़ेद चाँद किनारे के नीम की शाखों में लटकता, उलझता, छिपता, छनता, बर्फ़ख़ाने के धुएँ से पीला पड़कर निकलता, हलके सफ़ेद बादलों पर तैरता, मेरे साथ-साथ चला आता था। सब्ज़ी मंडी की बनती हुई इमारत और इधर-उधर बेतरतीबी से बिखरे हुए ईंटों के ढेर, फुट-पाथ पर लगी हुई घड़ों और मटकों की सोई हुई दुकान, परे जीतगढ़ का मीनार, सामने दूर तक बिजली के अंडों की क़तार और किनारे के वृक्षों के नीचे प्रकाश और छाया के जाल—सब स्वप्न-संसार के से मालूम होते थे। और मैं फिर किसी पहाड़ पर अपना नीड़ बनाने में निमग्न हो गया था।

मैं नहीं जानता कब अनजानी फ़िज़ाओं से ये 'जागते के सपने' मेरे मस्तिष्क पर उतर आते हैं। मैं एकदम तीन लाख रुपया पा जाता हूँ और फिर चलता-चलता उसके प्रयोग के सम्बन्ध में स्कीमें बनाने लगता हूँ।

× × ×

बड़े ज़ोर से ट्रैम की घण्टी बजी और ड्राइवर चीख़ा और मैं उचककर फ़ुटपाथ पर हो गया। इस बाल-बाल बच जाने पर मुझे रोमांच हो आया। खड़े हो गये और पिंडलियाँ काँपने लगीं। मेरे ये स्वप्न...मैं ज़रूर किसी मोटर बस, ट्रैम या ताँगे के नीचे आकर मरूँगा।

मैंने लम्बी साँस लेकर अपने इर्द-गिर्द देखा। मैं मंडी दरवाज़ा के पास था। बाज़ार का यह हिस्सा काफ़ी ग़लीज़ और गन्दा है। दोनों ओर छोटी-छोटी-सी दुकानें घण्टाघर तक चली गई हैं, जिनमें मोचियों, पनवाड़ियों और हलवाइयों का आधिक्य है। कुछ बड़ी दुकानें भी हैं, किन्तु उनकी संख्या चनों में गेहूँ के बराबर है। बाज़ार यद्यपि कुछ चौड़े हैं, किन्तु फिर भी उनमें से गुज़रते समय काफ़ी तकलीफ़ होती है—प्रायः बर्फ़ख़ाने का धुआँ सारे बाज़ार पर छाया होता है और कभी जब वह ख़ामोश होता है तो परे सब्ज़ी

मंडी के दूसरे सिरे पर बिड़ला मिल की चिमनी स्याह बादल उगल रही होती है।

उस समय मंडी की अधिकांश दुकानें बन्द हो चुकी थीं, सिर्फ़ पनवाड़ियों और हलवाइयों की दुकानें खुली थीं। एक घड़ीसाज़ की दुकान भी खुली थी, शायद इसलिए कि वहाँ पान भी बिकते थे। दुकानों के फ़ुटपाथ पर दिन भर के थके-माँदे बेसुध सोये हुए थे। कई जगह दो-दो आदमी एक-एक चारपाई पर सोये थे। एक जगह दो आदमी फ़ुटपाथ पर चादर बिछाकर सोये हुए थे, कुछ ऐसे भी थे, जिन्हें चारपाई या चादर दोनों में से एक चीज़ भी प्राप्त न थी—नंगे फ़र्श पर नंगे बदन चाँदनी की चादर ओढ़े वे नींद में बेहोश थे। कहीं-कहीं किसी दुबली-पतली कुतिया के पीछे गुर्राते, भूँकते, लड़ते, कुत्ते घूम रहे थे और कभी-कभी कोई ट्रैम इस बढ़ते हुए सन्नाटे को तोड़ती हुई निकल जाती थी।

एक उबासियाँ लेते हुए पनवाड़ी की दुकान पर मैं रुका और मैंने उसे खारी और मीठे सोडे की दो बोतलों को मिलाकर एक गिलास बना देने के लिए कहा।

पनवाड़ी ने गिलास बना दिया। मैंने पाँच-छै आने, जितने भी मेरे पास थे, उसके हाथ पर रख दिये और कहा कि अपने पैसे काटकर बाक़ी के पैसे या अधेले दे दे।

पनवाड़ी के पास अधेले नहीं थे। उसने मुझे पैसे दे दिये। गिलास उसे वापस देकर मैंने उन्हें जेब में डाला। सिल्क की हल्की-फुल्की क़मीज़ की जेब में उन सोलह-सत्रह पैसों का बोझ काफ़ी-सा महसूस होने लगा। ग्रहन लगने में अभी पौन घण्टे की देर थी। मैंने सोचा कि चलो ज़रा पंजाबी गली तक कांति के हो आयें। और मैं चल पड़ा।

कुछ और आगे जाकर जहाँ बाईं ओर की छोटी-छोटी दुकानों का सिलसिला ख़त्म हो गया है, मैं रुक गया। फ़ुटपाथ पर कुछ भिखारी स्त्रियाँ मानो एक दूसरी को तकिया बनाये पड़ी थीं। एक दो पुरुष भी थे। किन्तु शायद वे कुछ फ़ासले पर बैठे थे। कुछ तमाशाई भी खड़े थे और चाँद-ग्रहन के सम्बन्ध ही में बातें हो रही थीं। एक कह रहा था।

'अरे राहू ग्रस लेता है चाँद को।'

'अजी कौन राहू?' एक आवारा-सा नवयुवक कह रहा था (जिसने छठी-सातवीं तक ज़रूर साइंस पढ़ी होगी और जिसकी भूखी आँखें उस समय उस नौजवान भिखारिन पर लगी हुई थीं। जिसके कुर्त्ते के बटन टूटे हुए थे और जो अपने रिरियाते बच्चे को दूध पिला रही थी।) 'यह तो चाँद पर धरती का साया पड़ जाता है।'

'अभी क्या ग्रहन लगा नहीं?' एक बूढ़ी भिखारिन बोली, जिसने फुट-पाथ के नीचे पाँव पसार रखे थे।

'अभी तो दस बजे हैं।' नवयुवक ने कहा।

'ज़्यादह वक्त होगा।' एक दूसरा व्यक्ति बोला।

'दस बजकर पाँच मिनट हुए हैं। वह सामने घंटाघर की सुई नहीं दिखाई दे रही क्या?' नवयुवक ने उपेक्षा से कहा।

मैंने मुड़कर देखा। चाँदनी के बावजूद घंटाघर की सुई दिखाई न दे रही थी। किन्तु उस नवयुवक को ज़रूर आ रही होगी; क्योंकि उसकी निगाहें काफ़ी तेज़ थीं।

'अच्छा तो बाबू एक बीड़ी ही पिलवा दो।' सड़क से पाँव सुकेड़ते हुए बूढ़ी भिखारिन ने कहा।

'पिला दो एक बीड़ी बाबूजी।' नौजवान भिखारिन लगभग गिड़गिड़ाते हुए बोली, 'तुम्हारा दान होगा।'

'हम तो स्वयं ग्रहन का दान लेने निकले हैं।' नवयुवक ने बेहयाई से कहा और अर्थभरी निगाहों से भिखारिन की ओर देखा। 'दिलायेगा हमें भी कोई दान?'

और एक खोखली-सी हँसी हँसता हुआ वह बढ़ चला। बाक़ी भी उसके पीछे चले गये।

जीर्ण-शीर्ण और उपेक्षित गंदगी की बोरियों की तरह वे चन्द भिखारिनें वहाँ पड़ी थीं। चार-पाँच लेटी हुई थीं। एक खाँस रही थी। दो-तीन लड़कियाँ बेहोशी की नींद सोई हुई थीं—नंगी धरती पर पेट के बल, टाँगें फैलाये! और वह नौजवान भिखारिन तनी बैठी थी, शायद सूखी धरती पर लेटे-लेटे

उसकी कमर अकड़ गई थी। और उसका बच्चा उसी तरह रिरिया रहा था।

मुझे वहाँ यों अकेले खड़े रहने में शर्म-सी आने लगी। मैं चल पड़ा और मैंने अपने स्वप्न के अपूर्ण चित्र को पूर्ण बनाने की कोशिश की। मन को पहाड़ों की सुरम्य घाटियों में ले चला। लेकिन मेरी आँखों के सामने रह-रहकर भिखारियों की वही टोली आने लगी और कानों में वही अरमान भरे शब्द, 'अच्छा तो बाबू एक बीड़ी ही पिलवा दो!' और यद्यपि भिखारियों के विभिन्न दृश्य मेरे मन को काफ़ी उदास बना चुके थे और मैं बेतरह अपनी सपनों की दुनिया में भाग जाना चाहता था, लेकिन इस पर भी मैं बेख़याली में अपने स्वप्न के स्थान पर उस भिखारिन का स्वप्न देखने लगा। वह भिखारिन पहाड़ की किसी सुरम्य घाटी अथवा नगर के किसी एकान्त कोने में बने हुए किसी सुन्दर बँगले (जिस पर विनम्र शब्दों में 'नीड़' या 'कुटीर' लिखा हुआ हो) और उसके सुख आराम का स्वप्न तो भला क्या लेती। उसका बड़ा से बड़ा सपना तो भरा पेट, सिर छिपाने की जगह और एक बीड़ी होगा।

उसका पेट ज़रूर भर चुका होगा, नहीं वह बीड़ी माँगने के बदले रोटी माँगती और मैंने देखा कि असौज की उस दमकती हुई चाँदनी में, ठंडे फुट-पाथ पर लेटे-लेटे उस रोटी की या पनाह की ज़रूरत नहीं, उसकी सब से बड़ी हसरत तो उस समय एक बीड़ी है। तो क्यों न मैं उसके इस स्वप्न को पूरा कर दूँ...लेकिन मुझे तो भिखारियों से चिढ़ है और मैंने उसके स्वप्न को और उसे पूरा करने की अपनी इच्छा को परे हटाकर कान्ति को आवाज़ दी। दो-तीन आवाज़ें देने पर मालूम हुआ कि वह इस चाँदनी में सड़कों पर आवारा-गर्दी करने के बदले चुप-चाप बिस्तर पर सो जाने को गुनाह ख़याल नहीं। करता।

मैं मुड़ा, बिड़ला मिल की चिमनी फिर धुआँ उगलने लगी थी और चाँद फिर पीला पड़ गया था।

मैं उन भिखारियों के पास से गुज़रा। किसी दूरस्थ प्रदेश से पैदल चले आनेवाले, थक-हारकर सूखी धरती ही को बिस्तर बना लेनेवाले, श्रान्त-क्लान्त पथिकों की भाँति वे एक दूसरे से सटे हुए पड़े थे। नौजवान भिखारिन अभी बैठी थी और वृद्धा ने फिर टाँगें पसार ली थीं।

एक अज्ञात प्रेरणा के अधीन मैंने पूछा, 'तुम में से किसी ने बीड़ी माँगी थी?'

एक साथ ही तीन-चार भूखी निगाहें मेरी ओर उठीं—'हाँ !' और फिर उन्होंने कहा, 'इस बुढ़िया को चाहिए' !—शायद वे उस बुढ़िया का नाम लेकर मेरी हमदर्दी को बढ़ाना चाहती थीं, नहीं तो बीड़ी की हसरत मैंने उन सब की आवाज़ों में महसूस की।

मैंने कहा, 'मेरे साथ आओ ! एक बंडल ले दूँ'।

और वह बुढ़िया उठी। धुएँ से छिनकर आती हुई चाँद और बिजली के अण्डों की रोशनी में देखा—उसकी उम्र ज़्यादह न थी। क़द भी लम्बा था। लेकिन वक्त और आवारगी ने उसके चेहरे पर बेशुमार लकीरें बना दी थीं। और उसके कन्धों को भी झुका दिया था।

अपनी तरंग में मैंने पूछा, 'तुमने कभी बढ़िया सिगरेट पिया है ?'

'हमें कभी सिगरेट नहीं मिला बाबूजी, हम तो बीड़ी ..'

मैंने पनवाड़ी से कहा, 'क्रेवन-ए, की एक डिबिया बुढ़िया को दे दो।'

जी वह तो मेरे पास नहीं।

'अच्छा तुम्हारे पास जो बढ़िया सिगरेट है उसकी एक डिबिया इस बुढ़िया को दो।' और बुढ़िया से मैंने कहा, 'देख रे माई एक-एक सिगरेट सबको बाँट देना। बेच न देना। मैं देख रहा हूँ !'

'जी नहीं' और वृद्धा चली गई।

मेरे जी में आई कि मैं जाकर उन सबको सिगरेट पीते देखूँ। उनसे और विशेषतया उस नौजवान भिखारिन से बातें करें। किन्तु मुझे कुछ अजीब-सी शर्म महसूस होने लगी और चला आया। घर आकर मैंने मा से कहा कि पैसे नहीं मिले और नौकर को रुपया देकर बाज़ार भेज दिया।

× × ×

उस रात जब मैं सोया तो भिखारिन का सम्पूर्ण स्वप्न मेरे सामने दौड़ गया—भरा पेट, सिर छिपाने की जगह, और एक बीड़ी ! फिर धीरे-धीरे इस स्वप्न पर मेरा अपना स्वप्न छाता गया—तीन लाख का कभी पूरा न होने वाला स्वप्न !

यह अजीब बात है कि उस रात पहाड़ की सुरम्य घाटी में मैंने जो 'नीड़' बनाया उसमें मेरे साथ प्रेम करनेवाली, भोली-भाली, सुन्दर लड़की की शक्ल कुछ उस नौजवान भिखारिन से मिलती-जुलती थी।

झटके

१७ नम्बर में शादी हो रही थी।

× × ×

तीन नम्बर में हंस की मा और दूसरी स्त्रियों में धीरे-धीरे बातें हो रही थीं।

'दरवाज़े बन्द हैं।'

'तुम्हें कैसे मालूम हुआ?'

'१६ नम्बरवाली गोतो की मा ने दीवार पर चढ़कर देखा तुम्हारा हंस भी तो वहीं है।'

'मेरा हंस?'

'गोतो की मा कह रही थी कि वही भाई की हैसियत से कन्यादान कर रहा है।'

'वह कन्यादान कर रहा है—मेरा हंस?'

'गोतो की मा...'

'नहीं-नहीं मेरा हंस कैसे हो सकता है? गोतो की मा को तो बेपर की उड़ाने के सिवा कोई काम नहीं, हंस यदि कन्यादान करता तो मुझे क्या इस शादी का पता भी न चलता? मेरा बेटा तो मुझसे कोई बात छिपाता ही नहीं, और फिर वह क्यों इस पाप के काम में...

'मैं पूछती हूँ हंस की मा यह लड़की है कौन? मुहल्ले में तो चार दिन से तरह-तरह की बातें हो रही हैं, लाज-शर्म तो उसमें नाम को भी नहीं, कल दफ़्तर को जाते वक्त उसने बटुआ माँगा तो नंगे सिर ही बाहर सड़क तक दौड़ी आई, शादी तो आज हो रही है यह तो कई दिनों से इकट्ठे उठते-बैठते और हँसते-खेलते हैं।'

'कई दिनों से इन्हें तो आपस में मिलते-जुलते साल हो गया है। मैं सोचती हूँ इसकी मा आपत्ति नहीं करती।'

'माओं को आजकल के लड़के क्या जानते हैं ?'

'मेरा लड़का हो न ऐसा निर्लज्ज, मैं तो उसका मुँह तक न देखूँ ।'

'अब सब कोई एक जैसे थोड़ा ही होते हैं। मेरा हंस करे तो मेरी इच्छा के विरुद्ध कोई बात ?'

'इसका कोई आगा-पीछा नहीं क्या ?'

'मा-बाप नहीं लेकिन मामे, चचे, ताये और दूसरे निकट सम्बन्धी हैं।'

'तो क्या उन सबको छोड़कर आ गई है ?'

'और क्या सौ रुपया पाती है, उनकी यह क्या परवा करती है ?'

'सौ रुपया ! कहाँ काम करती है ?'

'कहते हैं मिन्टगुमरी में हेडमिस्ट्रेस है।'

'मिन्टगुमरी में तो इतनी दूर कैसे आ गई ?'

'ऐसी फिरनिकलियों के लिए दूर-नज़दीक में क्या अन्तर है ?'

'राम-राम लड़के-लड़कियों के घर ब्याहने आते तो सुने थे; पर लड़की लड़के के घर ब्याहने के लिए आती आज ही सुनीं।'

'तभी तो आजकल की लड़कियाँ आसमान में टाकी लगाती हैं, जिनकी उस्तानियाँ ऐसी चलित्तरी हैं वे आप कैसे न हवा से बातें करेंगी ?'

'हमने सुना है कि उसकी पहली पत्नी भी जीवित है।'

'अभी फ़रवरी में तो विवाह हुआ है, उसके तो लड़का-लड़की पैदा होनेवाला है।'

'कैसी हृदयहीन है ? इसे दया नहीं आई जो अपने ही जैसी एक लड़की के गले पर छुरी चलाने को तैयार हो गई ? अब उसका क्या बनेगा ?'

'छोड़ देगा और क्या ?'

'मेरे सरदार जी भी एक दिन मुझे कहते थे—मैं तुम्हें छोड़कर दूसरी शादी कर लूँगा।'

'ऐसा भी क्या अँधेर है ? दूसरी शादी कर लेगा, हँस रहा होगा, उसकी आदत जो है, नहीं सब क्या उस जैसे लफ़ंगे हो जायेंगे ? मेरा हंस भी अपनी शादी पर ऐसी बातें करता था, पर छोड़ना तो दूर रहा; मजाल है जो मेरी बहू के कानों में उन बातों की भनक तक पड़ी हो, उधर बहू ब्याह कर लाया

और इधर रोने लगा। मेरी ज़िन्दगी तुमने ख़राब कर दी है। तुम ही उसे देखकर आई थी। क्या वह मेरे योग्य है—इतनी बड़ी, इतनी मोटी, इतनी ऊँची, इतने भद्दे और मोटे मज़ाकवाली, हँसती है तो चेहरे पर दसियों कोनें बन जाती हैं, और तो और उसके पिता तक कहने लगे मैं हंस की दूसरी शादी कर दूँगा, लेकिन मैं मा होकर यह कैसे सहन कर लेती ? मेरे आगे लड़का नहीं क्या और मेरा बेटा इतना आज्ञाकारी है कि कुसका तक नहीं। और अब तो परमात्मा की कृपा से उसके घर बाल-बच्चा भी होनेवाला है।'

'मैं तो सुनती हूँ हंस की मर्ज़ी से ही यह विवाह हुआ है, गोतो की मा ही कहती थी कि एक दिन दोनों बातें कर रहे थे, हंस उसे समझा रहा था मेरी ज़िन्दगी तो बर्बाद हुई, तुम क्यों अपना जीवन तबाह करते हो ? और फिर अब जब कि तुम्हें उसी योग्य और समझदार पत्नी मिलती है।'

'योग्य—यही योग्यता है न कि सौत पर चढ़ी आ रही है ?'

'कब कहती थी गोतो की मा ? मैं पूछूँगी न जाकर कब हंस ने ये बातें कही थीं ? हमसे तो उसे न जाने कैसा वैर है ? ऐसी बातें उड़ायगी जिनका सान होगा, न गुमान। मैं कहती हूँ यदि हंस की मर्ज़ी ही से होती तो मुझे इस शादी का पता ही न चलता, मेरे सामने तो वह सदैव उसे कोसता रहा, इतने दिनों से यह लड़की आई हुई है, कहो तो एक दिन भी मेरे घर आई हो, मैंने साफ़-साफ़ कह दिया था मेरे घर न आये। मैं उस पापिन का मुँह नहीं देखना चाहती, अब जाकर बैठने का क्या है दफ़्तर में इकट्ठे काम करते हैं, शादी के वक्त वहाँ जा बैठा होगा, गोतो की मा तो...

'पर मैं कहती यह तो पहली पत्नी के होते हुए शादी करने चढ़ दौड़ा है। संसार में ऐसे आदमी भी हैं जिन्होंने पहली पत्नी की मृत्यु के बाद आजीवन शादी नहीं की।"

'सात नम्बर के सेठ ही को देख लो।"

'हाँ, सात नम्बर के सेठ को देख लो। चालीस वर्ष की कोई उम्र होती है, पर पत्नी के मरने के बाद मजाल है जो शादी का नाम भी लिया हो।'

× × ×

सात नम्बर के वही सेठ साहिब अपने बरामदे में बैठे हुए चन्द मित्रों से गर्ज-गर्जकर कह रहे थे—

'यह मुहल्ला है या कंजरख़ाना—हम एक पल के लिए भी यह सब सहन नहीं कर सकते, मुहल्ले की बहू-बेटियों पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा ?'

'मैं कहता हूँ इसे झख ही मारना था तो कहीं मन्दिर में जाकर मार लेता, यह क्या हुआ कि एक लड़की को भरे मुहल्ले में अन्दर डालकर उससे शादी रचा ली, मैं कल ही जाकर रायसाहिब से जाकर कहूँगा कि इसे तत्काल निकाल बाहर करें।'

'सुनते हैं रायसाहिब के लड़के से इसकी मैत्री है।'

'फिर क्या हुआ ? मैं कहता हूँ न निकालें रायसाहिब, ऐसा ठीक करूँगा कि तीस हज़ारी छोड़कर दिल्ली से भाग जायगा, यह किसी व्यक्तिविशेष का प्रश्न नहीं, यह सारे समाज का सवाल है, चार गुण्डे पीछे लगा दूँ तो होश ठिकाने आ जायँ।'

'होश—मैं कहता हूँ वे इसकी इस ज़रा-सी बीवी को उठाकर ले जाएँ।'

'हाँ और क्या।'

'मैं कहता हूँ सेठजी आप तो इसके सामने रहते हैं। आपने उसे समझाया नहीं ?'

'हमसे वह बात ही कब करता है। दो महीने हो गये उसे यहाँ आये हुए ; कभी हमसे तो राम-राम भी नहीं हुई, अपने आप को न जाने क्या ख़याल करता है ? हम तो इसके लिए जैसे मूर्ख हैं, अक्लमन्द बना फिरता है साला, यह कहाँ की अक्लमन्दी है ?'

'आख़िर इसकी पहली बीवी में दोष क्या था ?'

'पहली नहीं दूसरी कहो। पहली को तो मरे हुए आज कई वर्ष हो गये। उससे तो एक लड़का है, पाँच-छः वर्ष का।'

'ख़ैर दूसरी ही सही। आख़िर उसमें दोष क्या है ?'

'यही तो मैं कहता हूँ—पत्नी में कोई दोष हो, वह बाँझ हो, लूली हो, लँगड़ी हो, उस पर फ़ालिज गिर पड़ा हो, उसका अङ्ग-भङ्ग हो गया हो तो आदमी दूसरी शादी कर ले। इसकी दूसरी पत्नी में तो कोई दोष ही

नहीं। गोतो की मा ने इसकी मा से पूछा था। कहती थी, बड़ी नेक और भली लड़की है। खाना बनाना, सीना-पिरोना सब जानती है।'

'उसकी मा तो दूर रही उसने स्वयं एक दिन मुझसे कहा था, औसरत आदमी की नज़र से देखने से उसमें कोई दोष नहीं, मैट्रिक तक पढ़ी, घर के काम-काज में दक्ष, भली लड़की है पर मेरा उसका निर्वाह नहीं हो सकता, कोई क्लर्क उसे पाकर अपने आपको धन्य मानता।'

'क्लर्कों को तो जैसे वह आदमी ही नहीं समझता, अपने आपको न जाने क्या समझता है?'

"अजी यह मानसिक और बौद्धिक सम्बन्ध की बातें तो सब ढकोसले हैं; पूछे कोई उससे कि अगर तुझे तेरे जैसी संगिनी न मिलती थी तो तूने शादी ही क्यों की। अपना बच्चा था उसका पालण-पोषण करता, आख़िर विवाह का उद्देश्य ही क्या है? संतान-वृद्धि। जो व्यक्ति संतान के होते हुए भी विवाह करे उस-सा मूर्ख कोई नहीं, जब मेरी पत्नी का देहान्त हुआ, मेरा लड़का केवल आठ वर्ष का था। उस वक्त मेरी उम्र भी कोई ज़्यादह न थी, यही बत्तीस-पैंतीस की होगी, मित्रों और सगे सम्बन्धियों ने ज़ोर भी दिया पर मैंने एकदम इनकार कर दिया, अपने इस बच्चे को पाला, पढ़ाया और किसी योग्य बनाया। अरे उस समय की बात तो दूर रही, अभी परसों लाला रामनारायण मुझ पर ज़ोर दे रहे थे, कह रहे थे अब भी आराम से रहन चाहो तो विवाह कर लो, मैंने साफ़ कह दिया कि मैं आराम से हूँ, मैं सुखी हूँ। मैं यह पाप न करूँगा, मैं यह गुनाह न करूँगा। मैं यह...'

× × ×

और नम्बर २१ में सरदार जसवंतसिंह अपनी बीवी से कह रहे थे:—

'आख़िर बुरा क्या कर रहा है? उस हरामज़ादे सेठ की बात कर रही हो। मुहल्ला उससे तंग है। कोई लड़की, कोई बहू, कोई स्त्री गुज़रे वह घुटनों से ऊँचा साफ़ा बांधे सिर हाथ फेरता-फेरता नंगेबदन दरवाज़े में आ खड़ा होता है, और वह उसका बेटा। वह क्या करता है? मुहल्ले भर की बातें सूँघने के सिवा उसे काम ही क्या है? ये लोग मानसिक व्यभिचार करते हैं...अमुक की लड़की सुबह छत पर जाकर बाल छटकाती है...अमुक की पत्नी घूँघट नहीं

निकालती...अमुक की मा इतनी पतली धोती बाँधती है कि सब कुछ दिखाई देता है...इन सब बातों का ज़िक्र कर करके आनन्द लेने के सिवा ये और क्या करते हैं ? भूखे और नदीदे कहीं के। मैं कहता हूँ इन सब बातों से क्या यह अच्छा न था कि वह धर्म का अवतार सेठ चुपचाप दूसरी शादी करके घर बसाता और मैं पूछता हूँ कि हम ही कौन-सा बड़ा तीर मार रहे हैं ? इस सारी बकबक-झखझख से क्या यह अच्छा न था कि मैं दूसरा विवाह कर लेता। तुम क्या सुख पाती हो मेरे साथ ? कौन-सा सुख देती हो मुझे ? और वह कौन-सा सुख है जो हमें अब मिल रहा है और तब न मिलता ? तंग करती हो, तंग होती हो, रोती हो, रुलाती हो, पिटती हो, पिटाती हो, मैं स्वयं सोचता हूँ कि इस समस्त झूठे व्यापार को समाप्त करके दूसरी शादी कर लूँ...'

× × ×

और नम्बर १० में नगेन्द्र रामरत्न से कह रहा था:—

'मैं कहता हूँ इसमें कौन-सा सुर्ख़ाब का पर लगा हुआ है कि लड़कियाँ इस पर मरती हैं ? हमें तो कोई साली नहीं पूछती, और सितम ज़रीफ़ी देखो मेरी पत्नी यही समझती है कि दुनिया जहान की लड़कियाँ मुझ पर जान देती हैं। एक दिन कहने लगी मैं तो सुबह-शाम परमात्मा से यही प्रार्थना करती हूँ कि आप बिल्कुल गंजे हो जायँ ताकि मैं और सिर्फ़ मैं ही आपसे मुहब्बत कर सकूँ !'

'मैं कहता हूँ यार उसे तो कई लड़कियों के खत आते हैं। मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखे हैं !'

'यही तो मैं कहता हूँ, हमें कोई कम्बख़्त ख़त नहीं लिखती !'

'भई बात यह है कि वह कवि है।'

'तो हम क्या इतनी देर झख ही मारते रहे ? मेरी कविताओं को पढ़कर तो किसी ने पत्र नहीं लिखा। इतनी दूर से भाग आना और शादी के लिए तैयार हो जाना तो दूसरी बात है।'

'यही तो मैं भी सोचता हूँ कि आख़िर उसमें कोई न कोई गुण तो ज़रूर है ही, कोई यूसफ़सानी तो वह है नहीं कि लड़कियाँ उस पर मरती हों और मैं तो कहता हूँ कि पति की हैसियत से वह अत्यंत अनुचित क़िस्म का व्यक्ति

है। जिस व्यक्ति की पहली पत्नी को मरे हुए सात-आठ वर्ष हो गये हों और पाँच-छै वर्ष का लड़का मौजूद हो, दूसरी बीवी जीवित हो और उसके लड़का-लड़की होनेवाला हो, उससे यदि कोई लड़की विवाह करने को तैयार हो जाए तो उस व्यक्ति में कोई न कोई गुण तो होगा ही, और फिर तुर्रा यह कि लड़की कुरूप नहीं, अपढ़ या गँवार नहीं, अच्छी भली सूरत रखती है, बी० ए० बी० टी० है, हेडमिस्ट्रेस है और सौ रुपया वेतन पाती है, वास्तव में बात यह है कि उसे लड़कियों की हमदर्दी प्राप्त करने का गुण याद है। स्टेशन पर ही देख लो वह कितनी जल्दी स्त्रियों की सहानुभूति प्राप्त कर लेता है, यही सहानुभूति बाद को प्रेम बन जाती है।'

'इस नपुंसक से व्यक्ति से किस तरह उन्हें प्रेम हो जाता है, मैं इसी पर हैरान हूँ। हम तो आज तक यही सुनते आये हैं कि 'स्त्रियाँ सुन्दरता और शक्ति पर मरती हैं और हम व्यर्थ ही दंड पेल पेलकर मरा किये। मेरा ख़याल है कि आजकल की लड़कियों में दम ख़म ही नहीं नर पुरुष से वे कन्नी कतराती हैं। मैं पूछता हूँ यार वह निर्मला कैसी है? मेरा जी चाहता है कि किसी को बाँहों में लेकर इतना भींचूँ कि उसका दम निकल जाए।'

'तुम भी बस वह हो। अरे निर्मला में क्या रखा है? हड्डियाँ हैं, मांस का नाम तक नहीं।'

'पर मिल जाय तो बुरा क्या है?'

'मिल ही जायगी, इसका कौन ठिकाना है? भाई इन आजकल की लड़कियों का कुछ पता नहीं चलता, सरसरी नज़र से देखने पर मालूम होता है कि पलक झपकते ही गोद में आ गिरेंगी; लेकिन पास जाने पर उतनी ही दूर दिखाई देती हैं और फिर मेरा अनुभव तो यह भी है कि जो लड़की एक के घर जाती हो, ज़रूरी नहीं कि वह हरेक के जाने को तैयार हो जाय!'

'पसन्द तो मैं भी उसे नहीं करता, चिचुड़ी सी हड्डी जैसी तो है लेकिन... मैं चाहता हूँ कि अपनी सब कविताओं को उठाकर पुर्ज़े पुर्ज़े कर दूँ और आग में झोंक दूँ!'

'आपकी कविताएँ तो अच्छे-अच्छे मर्मज्ञ नहीं समझ सकते, फिर ये लड़कियाँ क्या समझेंगी?'

'निर्मला तो एम० ए० है।'

'एम० ए० होने से तो कोई कविता का रस लेना नहीं सीख लेता, ये सब वैसी हल्की चीज़ें चाहती हैं, जैसी कि वह लिखता है...आदर्शहीन और व्यर्थ...'

'मैं कहता हूँ यार सुल्ताना कैसी है।'

'कौन सुल्ताना?'

'वही जो स्टेशन पर गाने आती है।'

'कोई इतनी सुन्दर तो नहीं पर शरीर उसका सदैव आमन्त्रण देता है। पर वह तो महँगी वेश्या है।'

'लेकिन यार ग़जब का गदराया हुआ जिस्म है उसका।'

'और गला कैसा पाया है कम्बख़्त ने?'

'और गोलमोल गलगोथने गाल।'

'और आँखें बड़ी-बड़ी मुस्कराती।'

'वाणी में जादू, बातें करती है तो मन्त्र फूँकती है।'

'और चाल पग-पग पर प्रलय जगाती है।'

'मैं तो आज वहाँ ज़रूर जाऊँगा, नावेल्टी में पिक्चर देखेंगे। कारोनेशन से कुछ पिये-पिलायेंगे और फिर उधर चलेंगे, जल्दी उठो...मेरा जी चाहता है किसी को बाहों में लेकर इतना भींचूँ कि उसका दम निकल जाय।'

मनुष्य—यह ! O

अपनी पत्नी की मृत्यु के चौथे रोज़, जब पं० परसराम श्मशान से फूल चुनने के बाद मुहल्ले की धर्मशाला में आकर बैठे तो उस समय उनके मन में असीम वैराग्य उत्पन्न हो उठा था। उस समय ही क्यों, पत्नी उनकी जब से ही बीमार पड़ी थी, और जब ही उन्हें मालूम हुआ था कि डाक्टरों, हकीमों और वैद्यों की दवाएँ और उनकी मा के देवी-देवता, पीर-फ़क़ीर, सब उसे काली मौत के मुँह से न बचा सकेंगे, तभी से एक अज्ञात वैराग्य उनकी नस-नस में समाया जाता था।

प्रातः का अँधेरा अभी क़ाफ़ी गहरा था। लोग चुपचाप आकर दरी पर बैठ गये थे। धर्मशाला के मन्दिर का पुजारी भी मन्दिर के चौतड़े को धोने का काम छोड़ चुप-चाप शोक प्रकट करने के निमित्त आ बैठा था, परे दरवाज़े पर लालटैन, जैसे अपनी अन्तिम साँसों को भरसक रोककर प्रकाश देने का प्रयास कर रही थी ; तेल शायद समाप्त हो चुका था, और उसका मद्धम प्रकाश, अंधकार की गहराई को और भी व्यग्रता से प्रकटकर रहा था।

पं० परसराम ने दीर्घ निश्वास छोड़ा। चाहा उन्होंने कि यह अँधेरा उन्हें भी चुपचाप लील जाय, उसी तरह निगल जाय जैसे मृत्यु का अंधकार उनकी पत्नी को निगल गया था। गर्म कम्बल उनके कंधों से खिसककर धरती पर आ रहा था। क़मीज़ का गिरेबाँ खुला था ; पर शरीर में तीर की भाँति चुभ जानेवाले शीत का उन्हें लेश भी ज्ञान न था। उनकी तो मानो चेतना ही सन्न हो गई थी।

नाई ने कहा—यजमान, उठकर हाथ दे दो !*

---

* चौथे के रोज जब श्मशान से अस्थियाँ चुनने के बाद लोग आकर बैठते हैं तो फिर उन्हें अपने घर जाने की आज्ञा देने को हाथ देना कहते हैं।

परसराम अन्यमनस्क भाव से कम्बल को सम्हालते हुए उठे। खोये-खोये-से धर्मशाला के दरवाज़े पर आ खड़े हुए और उपस्थित लोगों की ओर उन्होंने हाथ बढ़ा दिया। तब सबको सुनाई देनेवाली एक लम्बी साँस के साथ, मानो उम्र-भर के अनुभवों से दबी हुई कमर को लेकर ला० राम लुभाया उठे और कुछ समीप आकर उन्होंने कहा—देखो बच्चा, अब ग़म को छोड़कर आगे की चिन्ता करो, यह संसार तो ऐसे ही चलता है।

इस 'आगे की चिन्ता' में जो संकेत निहित था, उसे समझकर परसराम का हृदय ग्लानि से भर आया और उन्होंने उपेक्षा से मुँह फेर लिया।

ला० राम लुभाया फिर लम्बी साँस लेकर चल पड़े और उनके बाद दूसरे लोग एक-एक करके शोक प्रकट करते हुए उनके पास से गुज़रने लगे :

'भाई, मौत के आगे क्या चारा है, अपने मन को शान्ति दो और अपना घर-दर बसाओ।'

'संसार में आना-जाना तो लगा ही है पंडितजी, इस तरह दुःख करके आदमी कहाँ तक जी सकता है?'

'मा के बुढ़ापे का ख़याल करो भाई, और कोई ऐसी सबील करो जिससे उसे भी सहारा मिले।'

'पण्डितजी, आपकी अभी उम्र ही क्या है, इस उम्र में तो हमें खाने-पहनने तक का भी ज्ञान न हुआ था।'

जब शोक-पूर्ण शब्दों के साथ प्रायः प्रत्येक पड़ोसी के कुछ ऐसे ही वाक्य उनके कान में पड़े तो पं० परसराम का विषाद और भी गहरा हो गया। और जब सबके चले जाने के बाद वह नाई के साथ मिलकर दरी उठाने लगे और नाई से एक खिसियानी-सी मुस्कराहट के साथ कहा—यजमान, वे तो देवी थीं, दया-धर्म का जैसा उन्हें ज्ञान था, वैसा किसे होगा! और फिर दरी लपेटते-लपेटते यह देखकर कि उसकी बात से यजमान के चेहरे पर एक बादल-सा होकर गुज़र गया है, नाई ने कहा—उन जैसी देवी तो यजमान, अब कहाँ मिलेगी; पर यदि आप हाँ करें, तो सुन्दर, शिक्षित, घर के काम-काज में चतुर...

परसराम रूखी हँसी हँसे और—हाँ, हाँ, क्यों नहीं! कहते हुए कम्बल

को लपेट, अँगोछा कंधे पर रख, जैसे अंगारों पर से गुज़रते हुए घर को चल पड़े।

× × ×

दुपहर को ऊपर छत पर धूप में आरामकुर्सी डाले वे चुपचाप पड़े थे और सुबह की बातें एक-एक करके उनके कानों में गूँज रही थीं—आगे की चिन्ता करो...घर-दर बसाओ.. मा के बुढ़ापे को सहारा मिले, ऐसी सबील करो... अभी आपकी उमर ही क्या है? और सोच रहे थे वे कि वे लोग कैसे शुष्क और हृदयहीन हैं? कैसे यह किसी की अस्थियों पर बैठकर विवाह की बातें कर सकते हैं? यह संसार कितना स्वार्थी है? हृदय नाम की वस्तु इसके यहाँ कितने कम परिमाण में मौजूद है?...तभी उन्होंने सुना, सीढ़ियों पर उनकी मा, इस अपने बुढ़ापे को, इन न ख़त्म होनेवाली निगोड़ी सीढ़ियों को कोसती, चढ़ी चली आ रही हैं।

मा जब पास आकर बैठ गई और साँस को उन्होंने ठीक कर लिया और बीमारी के दिनों में परसराम ने बहू की जो सेवा की और जिस-जिस तरह अस्पताल में उसे रखा और जिस तरह पैसा पानी की तरह बहाया, उन सबका ज़िक्र करके, जब अन्त में दो आँसू भी बहा लिये, तो कहने लगीं कि बेटा जो बना है, अवश्य टूटेगा, इस जग में और किस चीज़ को स्थायित्व है कि मनुष्य ही अमर रहें। यदि आदमी इस तरह चुप बैठ जाय तो फिर संसार के काम कैसे चल सकते हैं। और फिर एक लम्बी साँस लेकर उन्होंने गली बालमातावाले पं० दीनदयाल की चाची का ज़िक्र छेड़ा कि बेचारी बड़ी भली हैं, जब से पति की मृत्यु हुई है, उन्होंने भूलकर भी उजला कपड़ा नहीं पहना। अपने मन को उन्होंने घर के काम-काज और साधु-सन्तों की संगत में लगा दिया है और धर्म-कर्म की तो मानो वे मूर्ति हैं। और फिर बोलीं कि उनका भतीजा दीनदयाल तो बड़ा ही भला मानुस है, बिजली की कम्पनी में हेड क्लर्क है, दो सौ वेतन पाता है, अपनी चची को वह मा की तरह मानता है, उस बेचारे के कोई सन्तान नहीं। ले-देकर एक ही लड़की भागवन्ती है जो अपने पिता की धर्मपरायणा चची के चरणों में बैठकर घर के काम-काज और धर्म-कर्म के कामों में दक्ष हो गई है।...

तभी आकाश में कहीं से एक कटा हुआ पतंग असहाय-सा, बेबस-सा, इधर-उधर डोलता, क्षण-प्रतिक्षण नीचे गिरता उन्हें दिखाई दिया। जिधर को वह जा रहा था, उधर ही उनकी दृष्टि भी जा रही थी और उनकी मा उस समय यह जानकर कि उनका लड़का दत्तचित्त होकर सुन रहा है, सोल्लास भागवन्ती के रूप-गुण का बखान कर रही थीं। सहसा एक झपकी खाकर पतंग दूर किसी मकान के आँगन में जा गिरा।—पं० परसराम ने लम्बी साँस ली। मा तब तक कह रही थीं कि बच्चा दीनदयाल की चची ने तो कहा था कि यदि परसराम माने तो भागवन्ती।

तब पं० परसराम ने सहसा उन आँखों से मा की ओर देखा, जिनमें सफ़ेदी होने पर भी आग बरस रही थी और एक बार उनके मुँह से निकला—मा! उनकी कल्पना के सम्मुख तब उनकी सास का उदास और विवर्ण मुख फिर गया। कितनी मिन्नतों, कितनी प्रार्थनाओं के बाद एक-एक करके सात बच्चों को मृत्यु की गोद में सुलाने के बाद, उसने यह लड़की पाई थी। उसे अपने पति के साथ सुखी देखकर ही वह अपने सारे अभाव को, अपने बच्चों के निधन को, अपने पति की मृत्यु को, सब दुःख को भुलाये हुए थी। अपनी लड़की और दामाद को देखकर ही वह जीती थी; पर आज वह भी न रही! अपनी सास के दुःख का ख़याल करके परसराम सिहर उठे। उन्होंने निश्चय कर लिया कि धर्म का जो नाता एक बार स्थापित हो गया, उसे वे कदापि न टूटने देंगे। उसे सान्त्वना देंगे, उसे तसल्ली देंगे, कहेंगे कि क्या हुआ यदि तुम्हारी लड़की मर गई, तुम्हारा लड़का तो है। आख़िर दामाद और लड़के में अन्तर ही क्या है? वे उसके चरणों पर सिर रख देंगे और कहेंगे कि मा, तुम्हारा यह लड़का तुम्हारी हर सेवा के लिए हाज़िर है।

यह सोच वे उठे, सुसराल उनकी नगर ही में थी, चुपचाप वे उधर को चल पड़े।

× × ×

ड्योढ़ी में स्त्रियों के दायरे में बैठी उनकी सास अपनी जवान लड़की की मृत्यु पर क्रन्दन कर रही थी, उसे तो आयु भर रोना ही था; पर समाज का भी यह अनुरोध है कि ११ दिन तक उसे दिखाकर रोया जाय। उसके करुण-

क्रन्दन को सुनकर परसराम का दिल भर आया, चुपचाप ड्योढ़ी के पास जाकर खड़े हो गये। रोना कुछ क्षण के लिए बन्द हो गया। अन्दर जाने के लिए उन्हें मार्ग दे दिया गया। तभी उन्हें पहचानकर एक बुढ़िया ने गहरा निश्वास छोड़कर कहा—बेचारे का इस घर से इतना ही नाता था, अब सूरत तक को भी तरस जायँगे।

दूसरी ने कहा—भला यह कोई बात है, विमला जो है, और तब परसराम की सास से उसने कहा—अपना तो जो जाना था चला गया, बित्तो की मा, पर घर की आग दूसरे क्यों सेकें?

बित्तो की मा ने केवल एक दीर्घ निश्वास छोड़ा।

परसराम के कानों में भी इन बातों की भनक पड़ी। उन्हें इन दोनों पर दया हो आई। उनके दिल पर जो गुज़र रही थी, उनकी सास के हृदय पर जो बीत रही थी, उसे यह शुष्क, हृदय-हीन बुढ़िया क्या जाने?

जब स्त्रियों के चले जाने के बाद सास उनके पास आई तो अनायास ही उसकी आँखों में आँसू आ गये; पर शीघ्र ही व्यस्त-व्यस्त होते हुए बोली—सुबह का काहे को कुछ खाया होगा? और फिर उसने अपने भतीजे की बहू को बुलाकर कहा कि जल्दी से कुछ बना दो। परसराम ने बहुतेरा कहा कि मुझे भूख नहीं, मैं कुछ न खा सकूँगा; पर जब सास ने एक लम्बी साँस भरी और दुःखी होकर कहा—कि बचा, अब तू कब-कब मेरे घर खायेगा...तो परसराम चुप हो गये, खाना बना तो भूख न होने पर भी वे चुपचाप खाने लगे। सास पास आ बैठी। तब अचानक ही उसकी आँखें भर आईं, कण्ठ अवरुद्ध हो गया, घुटे-घुटे स्वर में बोली—इतना ही सम्बन्ध था भाग्य में, मैं तो तुम्हें पाकर निश्चिन्त हो गई थी; पर जिस विधाता ने अपने लड़के ही छीन लिये, वह दूसरे...

परसराम ने विनीत कंठ से कहा—तुम क्या बात करती हो मा। यह नाता इतना साधारण नहीं, इतना कच्चा नहीं कि मृत्यु सूत के तागे की भाँति इसे तोड़ दे।

'दुनिया में यह होता ही आया है बचा!'—सास ने कहा।

'दुनिया, दुनिया, मुझे तुमने दुनिया जैसा देखा है!'

सास ने कहा—बेटा, पराई लड़कियाँ तो आकर भाई-भाई में विछोह डाल देती हैं, फिर मेरा तो नाता अब कल की बात हो गई।

'पराई लड़की...'

'हाँ, अन्त को पराई लड़की तो आयेगी ही। अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है बेटा—और फिर एक दीर्घ निश्वास छोड़कर एक दबे स्वर में सास ने कहा—लोग कहते हैं कि घर की आग घर ही में रहे। विमला है—मेरे जेठ की लड़की, तुमने उसे देखा ही होगा, छोटी-सी ही थी जब अपने बाप के पास गया चली गई थी, पर अब तो बेटा, वह ब्याहने योग्य है, मेरे अगर कोई दूसरी लड़की होती तो क्या मैं तुम्हें जाने देती ; पर अब यही ..

परसराम ने कहा—तुम कहती क्या हो मा ?

'सोचती हूँ कि यह रिश्ता हो जाय तो मेरा भी आना-जाना खुला रहे ; नहीं तो पराई लड़की कब...'

परसराम को ग़ुस्सा आ गया। क्रोध से बोले—मा ने यह बात की, चची ने यह बात की, पास-पड़ोस ने यह बात की, कई आँख के अंधे सगाइयाँ लेकर भी आये ; पर मैं चुप रहा। किन्तु तुम—उसकी, मरनेवाली की मा होकर, यही बात करोगी और वह भी उसकी मृत्यु के चौथे दिन ही !—इस बात की मैंने स्वप्न में भी कल्पना न की थी।—क्रोध और भावावेश से परस-राम का गला रुँध गया, तभी किसी ने धीरे से कहा—नमस्कार, जीजाजी ?

परसराम ने सिर उठाकर देखा। अत्यन्त सुन्दर पर उदास, बड़ी-बड़ी आँखें लिये लज्जा के भार से जैसे सिमटी विमला उनके सामने आकर बैठ गई है।

क्रोध के आवेग में परसराम कुछ और भी कहनेवाले थे कि रुक गये और हैरान-से विमला की ओर देखने लगे। यह वही विमला है, जिसे उन्होंने आठ वर्ष पहले अपने विवाह के दिनों में फटी पुस्तकें और कटे बालों को लिये स्कूल जाते देखा था !

'पहचाना नहीं ?'—सास ने दीर्घ निश्वास भरकर कहा—विमला है, तुम्हारी साली !

परसराम ने धीरे से कहा—पहचानता हूँ, अब तो यह सयानी हो गई है।

और विमला का मुख लाल-लाल हो गया।

× × ×

साँझ पड़े जब परसराम लौटे तो उनका हृदय उदास न था, कुछ प्रफुल्लित ही था और रह-रहकर उनकी आँखों के सामने कान्त कामिनी विमला की सूरत फिर-फिर जाती थी। छिः छिः—वे अपने आप पर क्रुद्ध होते चले जा रहे थे ; पर जितना ही वे क्रुद्ध होते, जितना ही उस चित्र को मस्तिष्क से हटाने का प्रयास करते, उतना ही वह और भी गहरा होकर अंकित होता जाता और अनजाने ही वे विमला के गुण-दोषों का विवेचन करने लगते।

वहीं बैठे-बैठे उन्होंने पूछा था—कहो विमला, क्या करती रहीं? वहाँ, कुछ पढ़ीं भी या यों ही वक्त गँवाया कीं?

तब विमला ने कहा था—आठ जमातें पढ़ी हूँ और फिर अपनी रौ में कह चली थी—वहाँ से बहुत कुछ सीखा है जीजाजी मैंने, चादरों में ऐसे अच्छे फूल निकालती हूँ कि इधर कौन निकालेगा, दुसूती काम नफ़ीस-से-नफ़ीस सीख गई हूँ, इतने किस्म के स्वेटर बुन लेती हूँ कि गिना नहीं सकती और फिर धोतियों के किनारों से ट्रंकों के गिलाफ़ बना लेती हूँ, फटे कपड़ों के तागों से आसन बुन लेती और कसीदा . और परसराम सोचते—ऐसी ही पत्नी तो मैं चाहता हूँ, और तभी अपनी मृत पत्नी के अनेकों दोष उनकी आँखों के सामने फिर जाते—वह कहाँ इतनी चुस्त थी, अनपढ़ और अशिक्षित! और उसे कहाँ यह सब करना आता था और तभी वे अपने-आपको कोसने लगते। छिः छिः! यह क्या उचित है ; बित्तो से विमला का क्या मुकाबला, उस जैसा सरल, अबाध प्रेम उन्हें कौन दे सकता है? लेकिन विमला...

वहीं बैठे-बैठे तब विमला की बड़ी बहन आ गई थी और आँखों में आँसू भरकर उसने कहा था—जीजाजी, बित्तो को कहाँ छोड़ आये! और वह ऊँचे-ऊँचे रो उठी थी। तब उसका यह क्रन्दन उन्हें बहुत बुरा लगा था। विमला से बातें करते-करते वे एक और ही दुनिया में खो गये थे और विमला

की बड़ी बहन की यह संवेदना तक उन्हें रुचिकर प्रतीत न हुई थी, यद्यपि आज कई दिन से एक-मात्र इसी के सहारे जी रहे थे। आज अपने घर को जाते-जाते अपने इसी व्यवहार के अनौचित्य पर वे खिज-खिज उठे थे। क्या उसके लिए ऐसा करना उचित था, क्या उन्हें इस तरह खो जाना चाहिए था ? अपनी प्रिय पत्नी की मृत्यु के चौथे दिन ही ! छिः छिः !!

अपने आप से इसी तरह लड़ते-झगड़ते वे चले जा रहे थे कि मार्ग में उन्हें उनका मित्र चेतन मिल गया चेतन—वह सदैव ख़ुश, सदैव प्रसन्न रहनेवाला कँवारा !

'तुम्हारी पत्नी मर गई।'—चेतन ने ज़रा गम्भीर होकर कहा—मैंने कल ही सुना। और फिर एक साँस में कह उठा—देखो, अब शीघ्र ही विवाह के फन्दे में न फँसना, कुछ देर आराम करना !

पं० परसराम को उसका यह कथन अच्छा नहीं लगा। विमला का चित्र फिर विद्युत्-सा उनकी आँखों के सम्मुख फिर गया, दीर्घ निश्वास लेकर उन्होंने कहा—नहीं, अब क्या शादी करूँगा !

चेतन ने कहा—हाँ अब इस जंजाल में हरगिज़ न फँसना और फिर तुम तो इस जीवन का आनन्द भी ले चुके हो।'

पं० परसराम के यह दूसरा घाव लगा ; पर मन के भावों को मन ही में दबाकर कुछ दबे-दबे स्वर में उन्होंने कहा—नहीं, अब शादी क्या करूँगा। मेरी सास मेरी साली के लिए कह रही है, उसके कोई और लड़की भी नहीं। चाहती है कि उधर नाता कर लूँ तो उसका आना-जाना भी बना रहे। और फिर सहसा जोश से कह उठे—पर मैं तो शादी करने का ख़याल भी नहीं रखता, बित्तो की मृत्यु के बाद...

'हाँ-हाँ कहीं भी न फँसना, बिल्कुल न फँसना। आकाश में विचरनेवाले पक्षी की भाँति आज़ाद, स्वतन्त्र !'—और चेतन यह कहता-कहता चला गया। पं० परसराम कुछ परेशान-से वहीं कुछ क्षण खड़े रहे। एक तीव्र अट्टहास की भाँति चेतन के वाक्य उनके कानों में गूँजने लगे।

रात को खाना खाते समय मा ने गली-बालमातावाली पं० दीनदयाल की चाची की बात छेड़ी तो वे चुप सुनते रहे, उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि चेतन

की बातों से उनके हृदय पर जो घाव-से लगे थे, उन पर मा की बातें ठंडे मरहम का काम दे रही हैं।

× × ×

सुबह उठे, तो पं० परसराम का सिर भारी था। रात वे बहुत देर तक सो न सके थे। एक द्वन्द्व-सा सारी रात उनके मन में छिड़ा रहा था और प्रातः उठने के साथ ही जैसे ससुराल जाने की एक प्रबल आकांक्षा उनमें जाग उठी थी। विमला की वह सरल, सुन्दर मूर्ति सारी रात उनकी आँखों में घूमती रही थी। शौचादि से निवृत्त हो, नहा-धो, जल्दी-जल्दी खाना खा, कपड़े पहन वे तैयार हो गये। तभी दरवाज़े के ऊपर टँगे हुए अपनी स्व० पत्नी के चित्र पर उनकी नज़र गई। वे खड़े-खड़े रह गये। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ जैसे चोरी करने के जाते समय उनका पाँव किसी ने पीछे से पकड़ लिया है। अपना यह कृत्य भयावह रूप धारण करके उनके सामने आ गया। कोट उतारकर खूँटी पर टाँगते हुए वे कुर्सी पर बैठ गये और मन ही मन में इस कृत्य के लिए उन्होंने अपनी पत्नी के उस चित्र के सामने हाथ जोड़कर क्षमा माँगी।

इसके बाद वे कई दिन तक अपने कमरे से बाहर न निकले। द्वन्द्व उनके मन में शान्त हो गया हो, यह बात न थी; पर उन्होंने निश्चय कर लिया था कि वे उसे शान्त कर देंगे।

इन सात दिनों में कई अच्छे-अच्छे घरों से पैग़ाम भी आये; पर परसराम अपने कमरे से बाहर ही नहीं निकले। मा के पास भी वे नहीं बैठे कि कहीं वह गली-बालमातावाली—पं० दीनदयाल की चाची और उनकी भतीजी का ज़िक्र न ले बैठें।

क्रिया-कर्म के दिन जब उनकी सास और उनकी बड़ी साली शोक प्रकट करने के निमित्त आई तो विमला भी उनके साथ थी। तब भी पं० परसराम सामने न आये। क्रिया-कर्म से निबटकर ऊपर अपने कमरे में जा बैठे। जा तो बैठे; पर जैसे वहाँ से उठकर बाहर जाने के लिए उनका मन व्यग्र हो उठा। विमला आई हुई है, यह बात वे न भूल सके। रह-रहकर उनका मन उठकर खिड़की में जा बैठने के लिए, नज़र-भर विमला को देख लेने के लिए

व्यग्र हो उठता। अपने मन को रोकने का उन्होंने भरसक प्रयत्न किया। उनकी पत्नी का चित्र अब भी वहीं लगा था। उसे देख अपने-आपको उन्होंने कोसा भी; पर इन सब बातों के बावजूद जब उन्होंने सुना कि वे सब जा रही हैं तो वे खिड़की में जा खड़े हुए। तभी जैसे विमला ने उधर देखा और निमिष मात्र के लिए उनका हृदय धक-धक करने लगा।

जब वे दूर निकल गईं, तो उन्होंने खिड़की लगा ली और जाकर कुर्सी पर बैठ गये। तब फिर प्रतिक्रिया आरम्भ हो गई; पर इस बार वह अधिक देर तक न टिक सकी और उस आराम-कुर्सी पर लेट आँखें बन्द करके वे कल्पना की सुन्दर, सुरम्य वाटिकाओं की सैर में निमग्न हो गये, जिनमें उसकी मुस्कराहट की स्निग्ध धूप खिलती थी, उसकी सुगन्धित केशराशि के परस से भारी होकर हवा चलती थी और उसके मादक स्वर-संगीत को सुनकर सरिता कल-कल बहती थी—विमला, विमला . उन्होंने गुनगुनाया, वे उससे ही विवाह करेंगे।

तभी किसी ने कहा—बिन्नो! और घबराकर उन्होंने आँखें खोल दीं। सामने दीवार पर उनकी स्व० पत्नी का चित्र टँगा था। उन्हें मालूम हुआ जैसे यह आवाज़ वहीं से आई है। दिल धक्-धक् करने लगा। स्तब्ध बैठे कुछ क्षण वे उस चित्र को देखते रहे, फिर अचानक जैसे कोई दृढ़ निश्चय करके उठे। दरवाज़ा धीरे से बन्द कर दिया। और चिटकनी लगा दी। तब मेज़ को वे घसीटकर दरवाज़े के पास ले आये, उस पर कुर्सी को रखा, चढ़े और चित्र को उतार लिया।

कमरे में अँधेरा छा गया था। रौशनदान के शीशों से आनेवाले धीमे प्रकाश में उनकी नज़र दायीं ओर के क़दादम शीशे में गई और उस वक्त उन्हें अपना प्रतिबिम्ब एक प्रेतात्मा की भाँति दिखाई दिया। तभी बढ़कर उन्होंने एक समाचार-पत्र उठाया, तस्वीर को उसमें लपेटा और अन्दर कोठरी में जाकर चार ट्रंकों को उठाकर नीचे के बड़े ट्रंक में रख आये। मेज़ को उसकी जगह घसीट, कुर्सी को उसके ऊपर से उठा, उन्होंने दरवाज़ा खोलकर बिजली का बटन दबा दिया। तब उन्होंने समझ लिया, उस आवाज़ का उन्होंने गला घोंट दिया है।

× × ×

रात को खाना खाते समय, उन्होंने मा से स्वयं ही विवाह की बात चला दी।

मा का चेहरा खिल गया। गली-बालमातावाले पं० दीनदयाल की चाची की बात उन्होंने फिर चलाई। कहने लगीं—बेटा, वे तो आज भी आई थीं। लड़की तो भागवन्ती ऐसे सलीकेवाली, चतुर और बुद्धिमती है कि क्या कहूँ? न हो तू जाकर एक नज़र देख लेना।

तब परसराम की आँखों में विमला की मूर्ति बैठी थी। सुन्दर चंचल आँखें लज्जा के आवरण में लिपटी रहने पर भी उन्हें निमन्त्रण दे रही थीं। और मा कह रही थीं—

बेटा, कँवारे के तो अढ़ाई पर होते हैं, रिवाज ही ऐसा है, लोग एक-दो महीने तक तो आते हैं, फिर कोई बात भी नहीं करता, मैं यह नहीं कहती कि तू कँवारा रहेगा, पर अच्छे घर-दरवाले तो पूछ-पूछकर हार जायँगे।

अपनी कल्पना में निमग्न परसराम सुनते रहे, जैसे विमला उन्हें बुला रही थी, उन्हें कह रही थी—जीजाजी, तुम्हारे लिए ही तो मैं इतनी दूर से आई हूँ, इतनी दूर से—गया से...

और मा कह रही थी—तुम हाँ करो तो बेटा, मैं कल ही उसे बुलवा लूँ।

परसराम ने जैसे अपने आप 'हूँ' कहा। मा ने समझा, उसके पुत्र को समझ आ गई है और मन उसका फूल उठा। और पुत्र ने समझा कि गया से चलकर आनेवाली उस कान्त कामिनी विमला ने उसे बुलाया है, और वह उसे मिलने ज़रूर जायगा। लम्बी साँस लेकर वे उठे।

दूसरे दिन जब उनकी मा घर के काम-काज से निपटकर गली-बालमाता की ओर अपनी सहेली से मिलने जा रही थी, परसराम एक अत्यन्त सुन्दर, पर सूफ़ियाना सूट पहनकर अपने ससुराल की ओर अग्रसर थे।

× × ×

दिसम्बर का महीना था और आकाश खिला हुआ था। सूरज जो सुबह कंजूस की भाँति अपने धन को आँचल में छिपाये था, अब दोनों हाथों से उसे लुटा रहा था। बड़े दिनों की छुट्टियों में लाहोर में एक विशेष चहल-पहल थी। दुःख को जैसे दबाकर, व्यथा को जैसे भुलाकर, और अपनी विप-

न्नता को जैसे छिपाकर लोग घूम रहे थे। परसराम को सब ओर एक नयी स्फूर्ति, एक नया जीवन दिखाई दे रहा था। मन उनका जैसे निर्मल आकाश की गहराइयों में उड़नेवाली चीलों की भाँति पंख फैलाकर उड़ने को हो रहा था और उनका मस्तिष्क सुख के एक नये साम्राज्य का सृजन कर रहा था—जिसके राजा वे थे और रानी थी अनिन्द्य सुन्दरी विमला—तभी उनकी ससुराल आ गई।

सास उनकी आँगन में बैठी सूत अटेर रही थी, वे चुपचाप उसके पास जा बैठे। एक बार उसने अन्यमनस्कता से पूछा—कहो अच्छे हो! और जब उत्तर में उन्होंने कह दिया—आपकी कृपा है! तो वह फिर चुपचाप सूत अटेरने लगी।

पाँच मिनट बीते, दस मिनट बीते; पन्द्रह मिनट बीते, परसराम के लिए यह वातावरण असह्य हो उठा। खिसियाने-से स्वर में उन्होंने पूछा—तबीयत तो ठीक है?

उत्तर में सास ने केवल एक दीर्घ निश्वास छोड़ा।

पं० परसराम का सारा नशा हिरन हो गया। वे बैठे क्या करें, सास के मुँह की ओर ताकते रहे। वे कुछ भी तय न कर सके। हारकर उन्होंने पूछा—वे सब लोग किधर हैं?

'क्रिया के बाद अपने घर चले गये।'

कृत्रिम हैरानी के साथ परसराम ने पूछा—गया!

'नहीं अभी गया कैसे जायँगे, विमला का विवाह करके ही तब वापस लौटेंगे।'

'तो कहाँ सगाई की?'—परसराम ने जैसे बेपरवाही के साथ पूछा—

'यहीं शहर में की है। आज ही शगुन देकर आये हैं, तुम तो माने ही नहीं और उनको वापस भी जाना है।'

शहीदी भाव से वे बोले—मैं कैसे मान सकता, सावित्री की मृत्यु के बाद इतनी जल्दी...

सास बोली—मुझसे तो उन्होंने अनुरोध किया था; पर मैंने कह दिया भाई, उसके दिल पर बड़ी चोट लगी है, वह न मानेगा इतनी जल्दी...

परसराम ने दिल में जैसे रोते हुए कहा—अच्छा किया, अच्छा किया, और प्रणाम करके सास से छुट्टी ली और उठ आये।

घर पहुँचकर वे खटखट सीढ़ियाँ चढ़ गये। मा ऊपर आँगन में बैठी मटरों से दाने निकाल रही थी। उन्हें आते देखकर उसने शिकायत भरे लहजे में कहा—बेटा, तुमने बड़ी देर कर दी, गली-बालमातावाले पं० दीनदयाल और उनकी चाची...

गरजकर पं० परसराम ने कहा—तुम पागल हो गई हो क्या, यदि वह तुम्हारी लड़की होती तो तुम्हें अपने दामाद का इतनी जल्दी शादी कर लेना भाता क्या...और धम-धम पैर रखते वे अन्दर अपने कमरे में जाकर सूट समेत ही बिस्तर पर लेट गये।

मटर की फली मा के हाथ से गिर गई और हैरान-सी भौं-चक्की-सी वह उसी शून्य में देखती रह गई!

उबाल

जब दूध उबल-उबलकर कोयलों पर गिरने लगा और 'शाँ' 'शाँ' की आवाज़ के साथ एक तीखी-सी गन्ध उठी तो चन्दन ने हड़बड़ाकर पतीली की ओर हाथ बढ़ाया—कोयलों की तपन से पतीली लाल-सुर्ख़ हो रही थी। बेबसी की एक दृष्टि चन्दन ने इधर-उधर डाली—कोई कपड़ा पास न था। उसने चाहा—पानी का छींटा ही दे दे, किन्तु लोटे के पानी में अभी-अभी उसने आटेवाले हाथ धोये थे—दूध उबल रहा था और सड़ी हुई झाग की गन्ध कमरे में फैलने लगी थी और अन्दर कमरे में उसके मालिक और मालकिन धीरे-धीरे बातें कर रहे थे—विवशता के उस क्षण में चन्दन के बढ़े हुए हाथ और बढ़ गये और निमिष-मात्र में, तपती, जलती पतीली खट से फ़र्श पर आ गई। चन्दन की अँगुलियों की पोरें जल गईं। उबलता हुआ दूध उसके हाँथों पर गिर गया और जलन के कारण उसके ओठों से अनायास एक 'सी' निकल गई।

पतीली को खट से फ़र्श पर रखते हुए थोड़ा-सा दूध फ़र्श पर भी गिर गया था। उसी आटे के पानी से उसने उसे धो डाला और अँगुलियों की जलन को जैसे झाड़कर उतारता हुआ, वह स्नान-गृह की ओर भागा।

पानी की धार के नीचे हाथ रखे-रखे उसने सिर को हल्का-सा झटका दिया और मुस्कराया—वास्तव में जब भी उससे कोई मूर्खता बन आती थी, वह इसी प्रकार सिर हिलाकर ओंठों के बायें कोने से मुस्काराया करता था और ओंठ कटे होने के कारण उसके दाँत दिखाई देने लगते थे।

बात यह हुई थी कि दूध को अँगीठी पर रखकर वह अपने मालिक और मालकिन की बातें सुनने लगा था।—यद्यपि दिन काफ़ी चढ़ आया था और चन्दन ने दोपहर के खाने के लिए आटा भी गूँथ लिया था, लेकिन वे अभी तक बिस्तर ही पर लेटे बातों में मग्न थे और कुछ ही देर पहले उसके मालिक ने चन्दन को चाय बनाने का आदेश दिया था।

उसने दूध की पतीली को अँगीठी पर रख दिया था और वह उनकी बातें सुनने में निमग्न हो गया था। जब से उसके मालिक की शादी हुई थी, वह सुबह उठने के मामले में सुस्त हो गया था। इससे पहले वह प्रातः उठता, चन्दन को उठाता, मालिश करवाता, व्यायाम करता और प्रायः सैर को भी जाता, पर अपनी इस नव-परिणीता पत्नी के आने पर वह उसके साथ दिन चढ़े तक सोया रहता। जब जगता तो वहीं लेटे-लेटे चन्दन को चाय बनाने का आदेश दे देता। और फिर वे दोनों, पति-पत्नी धीरे-धीरे बातें किया करते, मीठी, रसभरी बातें।

चन्दन को इन बातों में रस आने लगा था। वे अन्दर बिस्तर पर लेटे धीरे-धीरे बातें कर रहे होते और वह बाहर बैठा उन्हें सुनने का प्रयास किया करता।

आँच की तेज़ी के कारण दूध पतीली में बल खाता हुआ ऊपर उठ रहा था और चन्दन उस ओर से बेख़बर उनकी बातें सुनने में निमग्न था।

'मैं विवश हो जाता हूँ, तुम्हारे गाल ही ऐसे हैं...'

'आपके हाथों का अपराध नहीं क्या ?...'

'इतने अच्छे हैं तुम्हारे गाल कि...'

'जलने लगे आपकी चपतों से...'

'लो मैं इन्हें ठंडा कर देता हूँ।'

और चन्दन को ऐसे लगा जैसे कोई कोमल मृदुल फूल रेशम के नर्म-नर्म फ़र्श पर जा पड़ा हो। कल्पना ही कल्पना में उसने देखा कि उसके मालिक ने अपने ओंठ अपनी पत्नी के गाल से लगा दिये हैं। वहीं बैठे-बैठे उसका शरीर गर्म होने लगा, उसके अंग तन गये और कल्पना ही कल्पना में अपने मालिक का स्थान उसने स्वयं ले लिया।

हाथ धोकर उसने सिर को फिर झटका दिया और ओठों के बायें कोने से मुस्कराता हुआ वह अन्दर गोदाम में गया। उसने ज़रा-सा सरसों का तेल लेकर अपने हाथों की काली मैली, जलती हुई त्वचा पर उस जगह लगाया, जहाँ जलन हो रही थी। फिर जाकर वह रसोईघर में बैठ गया और उसने चाय की केतली अँगीठी पर रख दी।

किन्तु हाथ जलाने और अपनी इस मूर्खता पर दो बार सिर हिलाकर मुस्कराने पर भी उसके कान फिर कमरे की ओर लग गये और उसकी कल्पना अपनी समस्त तन्मयता के साथ उसके श्रवण की सहायता करने लगी। और उसकी आँखों के सम्मुख फिर कई चित्र बनने और मिटने लगे।

× × ×

'चन्दन!' उसके मालिक ने चीखकर आवाज़ दी और फिर कहा—'वहीं मर गये क्या?'

मालिक की आवाज़ सुनकर वह चौंका। जल्द-जल्द चाय और तोस बनाकर, अन्दर ले गया।

उसके मालिक-मालकिन पूर्ववत् बिस्तर पर पड़े थे। वे दोनों आलिंगन-बद्ध तो न थे, फिर भी दोनों एक दूसरे से सटे तकिये के सहारे लेटे हुए थे। लिहाफ़ दोनों के सीने तक था और मालिक की बाँह अभी तक मालकिन की गर्दन के नीचे थी।

'इधर रख दो।'

चन्दन ने ट्रे तिपाई पर रख दी।

एक बार देखकर मालिक ने कहा—तुम्हें हो क्या गया है? दूध का जग कहाँ है?

'जी, अभी लाया!' और सिर को एक बार झटका देकर ओठों के बायें कोने से मुस्कराता वह रसोई की ओर भागा।

दूसरे क्षण उसने दूध का बर्तन लाकर रख दिया, पर उसे फिर गालियाँ सुननी पड़ीं, क्योंकि दोबारा देखने पर मालिक को मालूम हुआ कि छलनी भी नहीं है।

चन्दन ने छलनी लाकर रख दी और क्षणभर के लिए वहीं खड़ा रहा। उसकी दबी हुई दृष्टि अपनी मालकिन के चेहरे पर जा पड़ी—सुन्दर, सुगन्धित, सुबासित खुले केशों की लटें उसके गोरे गलगोथने चेहरे पर बिखरी हुई थीं, ओठ सूखे होने के बावजूद गीले-गीले थे; मुस्कराती आँखों में तन्द्रा की बारीक-सी रेखा थी और चेहरे पर हल्की-सी थकन की छाया। उसके मालिक ने बड़े प्यार से कहा—'चाय बना दो न जान—'

पर 'जान' ने रूठते हुए करवट बदल ली।

'मैं कहता हूँ चाय न पियोगी ?' उसे मनाते हुए मालिक ने कहा।

'मुझे नहीं पीनी चाय।' गाल को मसलते हुए मालकिन ने उत्तर दिया, जिस पर अभी-अभी प्यार की हल्की-सी चपत उसके मालिक ने लगाई थी।

गर्दन के नीचे की बाँह उठी और मालकिन अपने मालिक के आलिंगन में भिंच गई।

'क्या करते हो, शर्म नहीं आती ?'

चन्दन का दिल धक्-धक् करने लगा और उसके मालिक का क़हक़हा कमरे में गूँज उठा।

'उठो, बना दो न चाय !' मालिक ने बड़ी नर्मी से बाँह को ढीला छोड़ते हुए कहा—'तुम्हारे गाल ही ऐसे प्यारे हैं कि अनायास उन पर चपतें लगाने को जी चाहता है।'

तड़पकर मालकिन ने फिर करवट बदल ली।

'चन्दन, तुम बनाओ चाय।'

लगभग काँपते हुए हाथों से चन्दन ने चाय की प्याली बनाई।

प्याली उठाकर अपनी 'जान' को बग़ल में भींचते हुए उसके मालिक ने प्याली उसके ओंठों से लगा दी।

× × ×

यह 'जान' का शब्द था, या उसके मालिक का, उसके सामने अपनी पत्नी को आलिंगन में लेना, कि जब दोपहर को काम-काज से निबटकर चन्दन अपनी कोठड़ी में जा लेटा, तो उसकी आँखों में 'ज़ोहरा जान' का चित्र घूम गया और उसने अनायास सरसों के तेल और मिट्टी में सने ग़िलाफ़-हीन मैले, जीर्ण-शीर्ण तकिये को अपने आलिंगन में भींच लिया।

अचानक उबलकर ऊपर आ जानेवाले दूध की भाँति न जाने ज़ोहरा का यह चित्र किस तरह उसके बचपन की गहरी, दबी, गुफ़ाओं से निकलकर उसके सामने आ गया—वही नाटा-सा क़द, भरा-भरा गदराया शरीर, बड़ी-बड़ी चंचल आँखें, पान की लाली से रँगे ओंठ, भारी कूल्हे, वही छातियों का उभार और वही स्वर्ण-स्मिति जिसके स्रोत का पता ही न चलता था कि आँखों में आरम्भ होती है या ओठों पर।

वह उस समय बहुत छोटा था और अनाथ हो जाने के कारण अपनी मौसी के पास रहा करता था। उसकी यह मौसी एक सेठ के बच्चों की धाय थी। यह सेठ चावड़ी बाज़ार में ग्रामोफ़ोन और दूसरे साज़ों की दुकान करता था। इस दुकान के सामने ज़ोहरा का चौबारा था और सेठ की दुकान के बाजे चाँदी के सिक्कों में परिणत होकर धीरे-धीरे वहाँ पहुँचा करते थे।

चन्दन अपने मौसेरे भाई और सेठजी के बड़े लड़के के साथ कभी-कभी ज़ोहरा के चौबारे पर चला जाता था।

ज़ोहरा सेठजी के लड़के को प्यार किया करती, मिटाई आदि देती और इस मिठाई का कुछ जूटा हिस्सा इन दोनों भाइयों को भी मिल जाया करता था। कई बार वह दूसरे बच्चों के साथ चौबारे के बाहर आँगन में खेल रहा होता कि सेठजी आ जाते। ज़ोहरा के पास जा बैठते, उसे आलिंगन में ले लेते या उसके सुकोमल उरु पर सिर रखकर लेट जाते।

उसकी यह मालकिन भी तो ज़ोहरा से मिलती-जुलती थी—उसी जैसा नाटा क़द, उसी जैसे भरे गदराये कूल्हे, बादलों-सी उमड़ती हुई छातियाँ, गोल-गोल रस भरे गाल, बड़ी-बड़ी मुस्कराती आँखें और गोल ओंठ—कौन कह सकता है कि उस एक क्षण में उसे अपने मालिक के आलिंगन में बँधे देखकर ही उसे ज़ोहरा का ध्यान न हो आया था।

कल्पना ही कल्पना से चन्दन ज़ोहरा के चौबारे पर पहुँचकर सेठ बना उसकी जाँघ पर सिर रखे लेट गया और ज़ोहरा प्यार से उसके बालों पर हाथ फेरने लगी।...वह भूल गया कि उसके टखनों तक मैल जमी हुई है, खुश्की के कारण उसकी टाँगों की त्वचा घुटनों तक पपड़ी बन गई है; उसकी नीली निक्कर (जो उसके मालिक ने उसे कभी दी थी) मैल से काली हो गई है; उसकी कमीज़ कई जगह से फटी है; उसके स्याह माथे पर चोट का एक अत्यन्त घिनावना दाग़ है, उसका निचला ओंठ कटा हुआ है, उसके सिर के बाल छोटे-छोटे और रूखे हैं—वह मस्त लेटा रहा और ज़ोहरा उसके बालों पर हाथ फेरती रही। वहीं उसके उरु पर लेटे-लेटे उसने करवट बदली और कहना चाहा, 'ज़ोहरा, कितनी अच्छी हो तुम...' पर उसकी कमर में कोई तीखी-सी चीज़ चुभ गई और तब उसने जाना कि वह नंगे फर्श पर लेटा

हुआ है और वह चीज़, जिस पर उसका सिर रखा है, ज़ोहरा की जाँघ नहीं बल्कि वही सड़ा-गला मैला तकिया है।

चन्दन ने सिर को झटका दिया, किन्तु वह मुस्कराया नहीं। उठकर, दीवार से पीठ लगाकर बैठ गया। वहीं बैठे-बैठे पिछले कई वर्ष उसकी आँखों के सामने उड़ते हुए-से गुज़र गये।

सेठजी तो अपनी सब जायदाद चावड़ीबाजार के 'हुस्न' की भेंट करके अपने नाना के गाँव चले गये थे, जो मध्य-पंजाब में कहीं अपनी कुरूपता और अपढ़ता की गोद में सोया पड़ा था। चन्दन की मौसी रियासत अलवर में अपने गाँव चली गई और चन्दन इस अल्प वयस ही में तीन रुपए मासिक पर उन सेठ के एक मित्र के यहाँ नौकर हो गया था...

इसके बाद उसका जीवन उस कम्बल की भाँति था जिसे इधर से रफ़ू किया जाय तो उधर से फट जाय। और उधर से सिया जाय तो इधर से उधड़ जाय।

अपने इस मालिक के यहाँ पहुँच कर उसने सुख की साँस ली थी और उसने यह महसूस किया था कि ऐसा हँसमुख, उदार और खुले स्वभाव का मालिक उसे गत बारह वर्ष की नौकरी में नहीं मिला। किन्तु उसके मालिक का यही खुलापन उसके लिए मुसीबत बन गया। उसका मालिक उसके सामने ही अपनी पत्नी से प्यार करने लगता, उसे आलिंगन में ले लेता और प्रायः चूम लेता, जैसे चन्दन हाँड़-मांस का इन्सान न हो, मिट्टी का लौंदा हो।

चन्दन ने सोचा, इस विवाह से पहले वह कितने सुख-शान्ति से रहता था। अंगों में यह गर्मी-गर्मी-सी, नसों में यह तनाव-तनाव-सा, यह अशान्ति और अनिद्रा-सी उसने पहले कभी न महसूस की थी। वह सोता था तो गत-आगत का होश उसे न रहता, किन्तु जब से उसके इस मालिक ने विवाह किया और उसकी यह नयी मालकिन आई उसकी नींद उड़-सी गई थी। उसे विचित्र प्रकार के सपने आते। रात उसने कासनी को देखा था। कासनी उसके एक पहले मालकिन की लड़की थी, कच्ची नाशपातियों-सी उसकी छातियाँ थीं, टखनों से ऊँचा लहँगा और बंडी पहने वह नंगे सिर घूमा करती थी। यही लड़की स्वप्न में उसके साथ आ लेटी थी। कैसे? कहाँ? उसे कुछ

याद नहीं ! पर वह जाग उठा था। उसका शरीर गर्म था, उसकी नसें तनी हुई थीं और उसे पसीना आ गया था—फिर वह सो न सका।

कुछ भी समझ में न आने से अपनी मूर्खता पर उसने सिर हिलाया, पर वह मुस्कराया नहीं। उसका मालिक दफ़्तर गया हुआ था। मालकिन अन्दर कमरे में गहरी नींद सोई हुई थीं। वह उठा और पड़ोसी राय साहिब के नौकर जेठू की कोठरी की ओर चल पड़ा, जहाँ दोपहर के समय इर्द-गिर्द के सब नौकरों की महफ़िल जमा हुआ करती थी।

× × ×

चैत सुदी पूर्णमासी का चाँद बड़ के पीछे से धीरे-धीरे ऊपर उठ रहा था। नव-वय की कीकरी के पत्ते तरल-रजत के परस से चमक उठे थे। चन्दन धीरे-धीरे अपनी कोठरी से निकला—सामने कोठी के पोर्च पर फैली हुई बुगन-बेलिया के लाल गुलअनारी फूल चाँदनी में हल्के स्याही मायल दिखाई दे रहे थे। एक ओर गुलमौर का पुराना पेड़ (जिसका तना पारसाल मध्य से काट दिया था) अपनी कुछ-एक शाखाओं के सिरों पर पत्तों और फूलों के गुच्छे लिये मस्ती से झूम रहा था। दूर से ये गुच्छे नन्हें-नन्हें बादलों के टुकड़ों से दिखाई देते थे। ककरौंदे और खट्टे के फूलों की मादक सुगन्ध वायु-मंडल के कण-कण में बस गई थी।—यद्यपि अभी तक वे सब अन्दर कमरे में सोते थे, पर नव ऋतु के आगमन से सर्दी अधिक न रही थी। चन्दन अनमना-सा गोंदनी के एक छोटे-से पेड़ के पास जा खड़ा हुआ। वहीं अपने ध्यान में खड़े-खड़े उसने दो-चार नन्हीं-नन्हीं गोदनियाँ तोड़कर मुँह में डाल लीं। पूरी तरह पकी न थीं। उसके मुँह का स्वाद बिगड़ गया। क्षण भर तक वह असमंजस की दशा में वहीं खड़ा रहा। फिर वह बरामदे में गया और उसने बड़ी साव-धानी से बैठक का दरवाज़ा खोला।

सोने का कमरा बैठक के साथ ही था और बैठक साधारणतः खुली रहती थी। उसका एक दरवाज़ा वह स्वयं बाहर से बन्द कर लिया करता था और दूसरा मालिक अन्दर से बन्द कर लेते थे। उसने धीरे से दरवाज़ा खोला। मालिक के सोने के कमरे में हल्की रोशनी थी, उसका प्रतिबिम्ब दरवाज़े के शीशों पर पड़ रहा था। ऐसा प्रतीत होता था जैसे किसी ने गदले

प्रकाश की कूची दरवाज़े के शीशों पर फेर दी हो। धीरे-धीरे दरी पर पाँव रखता हुआ चन्दन बढ़ा और जाकर दरवाज़े के साथ पञ्जों के बल खड़ा हो गया।

अन्दर छत में लाल रंग का बल्ब जल रहा था, उसके धीमे प्रकाश में वह आँखें फाड़-फाड़कर अन्दर देखने लगा। किन्तु दूसरे ही क्षण वह वापस मुड़ा। उसका शरीर गर्म होने लगा था, अंगों में तनाव आ गया था, कण्ठ और ओठ सूखने लगे थे और उसकी नसों में जैसे दूध उबलने लगा था।

उसी तरह पञ्जों के बल भगता-सा वह बाहर आया। धीरे से उसने दरवाज़ा लगाया और बाहर चाँदनी में आ खड़ा हुआ। सामने गुलमोर का तना खड़ा था। उसके जी में आया कि अपने युवा वक्ष की एक चोट से उस तने को गिरा दे।

कोठी के सामने लान में फुहारे के गिर्द लाल-पीले फूलों के अगनित पौधे लहरा रहे थे, जिनके चौड़े-चौड़े पत्तों पर पानी की बूँदें फिसल-फिसल पड़ती थीं। ककरौंदे की सुगन्ध और भी तीखी होकर वायु-मण्डल में बस गई थी। चन्दन ने जाकर फुहारे की टँटी घुमा दी ..फर्र-फर्र मीठी फुहार उस पर पड़ने लगी।

वह जेठू के यहाँ क्यों गया? वह सोचने लगा—दोपहर के समय इर्द-गिर्द की कोठियों के नौकर जेठू की कोटरी में इकट्ठे होते थे। कभी ताश खेलते, कभी चौसर की बाज़ी लगाते, कभी अपने-अपने मालिकों और मालकिनों की नक़लें उतारते। कभी जेठू अपने चचा से तवेवाला बाजा माँग लाता, जो उसने एक कबाड़ी की क्लीयरिंग सेल (clearing sale) में ख़रीदा था। उसकी आवाज़ ऐसे थी जैसे अतिसार का रोगी बच्चा रिरिया रहा हो किन्तु इस पर भी सब बड़े मज़े से उस पर 'गोरी तेरे गोरे गाल पै' या 'तोसे लागी नज़रिया रे' सुना करते। हाल ही में जेठू चारली का एक नया रिकार्ड ले आया था और दोपहर भर उसकी कोठरी में—

'तेरी नज़र ने मारा!
एक दो तीन चार पाँच छः सात आठ नौ दस ग्यारह
तेरी नज़र ने मारा!'

होता रहता था—लेकिन चन्दन कभी उधर न गया था, उसके पास समय ही न था। प्रातः ही उसका मालिक उसे जगा दिया करता था। वह उसके मालिश करता, उसके लिए नहाने का पानी तैयार करता, चाय बनाता, उसके दफ्तर चले जाने के बाद खाना तैयार करता, दफ़्तर ले जाता, आकर नहाता, खाता और सो जाता—ऐसी गहरी नींद कि प्रायः दिन छिपे तक सोया रहता और कई बार उसके मालिक को दफ़्तर से आकर उसे ठोकर मारकर जगाना पड़ता। किन्तु आज अपनी अनिद्रा से हारकर जब वह दोपहर को जेठू की कोटरी में गया तो उसने ऐसी बातें सुनी कि उसकी रही-सही नींद भी हराम हो गई।

फुहार के पहले परस से उसके शरीर में झुरझुरी-सी उठी। वह डरा, कहीं उसे ज्वर तो नहीं हो गया ? ऋतु बदल रही है और वह पानी के नीचे खड़ा भींग रहा है। यदि उसे निमोनिया हो गया तो। उसने सिर को एक बार झटका दिया, पर वह मुस्कराया नहीं और फ़व्वारे को खुला छोड़कर ही अपनी कोठरी में जाकर लेट गया।

× × ×

शीघ्र ही उसकी आँख खुल गई। उसका सिर भारी था। तन जल-सा रहा था और आँखें कुछ कडुवी उबली-उबली-सी हो रही थीं—उसने फिर एक स्वप्न देखा था—कच्ची नाशपातियों के गुच्छे उसके इर्द-गिर्द घूम रहे हैं। वह एक सूने वीरान मकान में खड़ा उन्हें पकड़ने का प्रयास कर रहा है, पास ही पानी का एक नल चल रहा है और उसके पास एक बच्चा खड़ा चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा है, 'मेरा खिलोना मत तोड़ो,' 'मेरा खिलौना मत तोड़ो' वह सिर उठाकर देखता है। वह बच्चा कासनी बन जाती है और सुनता है उसका आर्त स्वर—'मेरी नाशपातियाँ मत तोड़ो, मेरी नाशपातियाँ...'

चन्दन उन्मादी की भाँति उठा। जेठू की बातें उसके कानों में गूँज उठीं। उसने कुर्ता पहना। एक पुराने मैले मिट्टी के बर्तन में से पुराना-सा बटुआ निकालकर जेब में रखा। कोठरी की कुण्डी लगाई और धीरे-धीरे कोठी से बाहर निकल गया।

× × ×

चाँदनी एक रजत वितान की भाँति प्रेड की ग्राऊंड पर फैली हुई थी और सड़कों के नीम जैसे इस वितान को थामे खड़े थे, उनके पत्तों से बिजली के बल्ब टिमटिमा उठते थे और दूर से देखने पर ऐसा मालूम होता था, जैसे उनके परे कोई धीमा-सा अलाव जल रहा हो।

चन्दन 'क्वीन मेरी रोड' पर हो लिया। दाईं ओर की कोठी से ककरौंदे, खट्टे और मौलश्री की मिली-जुली सुगन्धि का एक झोंका आया और सड़क पर पेड़ों के नीचे बिछे प्रकाश और छाया के जाल हिले।

तीस हज़ारी के चौरस्ते पर वह रुका कि शायद कोई ट्रैम आती हुई मिल जाए, किन्तु शायद ग्यारह कभी के बज चुके थे, सड़क बिलकुल सुनसान थी। एक गन्दगी की गाड़ी दुर्गन्ध फैलाती हुई उसके पास से गुज़र गई। चन्दन का दिमाग़ भन्ना गया। भाग कर वह मिठाई के पुल पर हो लिया। जिस चबूतरे पर सिपाही खड़ा रहता था, वह टूटा हुआ था, शायद किसी मोटर ड्राइवर ने सिपाही की कर्कशता का बदला इस निरीह चबूतरे से लिया था। पुल पर बिलकुल सन्नाटा था। ऊपर चाँद चमक रहा था और पुल के नीचे अँधेरे तथा गहराई में रेल की लाइनें और सामने कुछ दूर लाल-हरे सिगनल चुपचाप टिमटिमा रहे थे। चन्दन पुल की दीवार के साथ सिर लगाये क्षण भर तक चुपचाप विमुग्ध-सा इन नागिनों-सी लाइनों और टिमटिमाते हुए सिगनलों को देखता रहा। फिर वह आगे चल पड़ा।

सड़क बिलकुल सुनसान थी, दोनों ओर की दुकानें बन्द थीं और फुटपाथ पर मैले-कुचैले गर्हित लिहाफ़ लिये कहीं-कहीं दुकानदार सोये हुए थे—मैल से सनी काली धोतियों में उनके गौर अङ्ग पूर्णमासी के चाँद की जगमगाती ज्योत्स्ना में और भी चमक रहे थे। तेलीबाड़ा के सामने सड़क के बाईं ओर फुटपाथ पर एक टूटा हुआ ताँगा पड़ा था और दो-तीन कूड़े की खाली गाड़ियाँ खड़ी थीं। इसके बाद दूर तक सफ़ेद-सी दीवार चली जाती थी, जिसके पीछे कभी किसी रेलगाड़ी के तेज़-तेज़ गुज़रने की आवाज़ आ जाती थी। दायीं ओर दुकानों के बाहर कहीं बांसों के गट्ठे पड़े थे, कहीं चारपाइयाँ और कहीं लकड़ी की ख़ाली पेटियाँ। चंदन चुपचाप अपने ध्यान में मग्न कुतबरोड के चोरस्ते पर आ गया।

सदर बाज़ार बिलकुल बन्द हो गया था। केवल कोने के हलवाई की दुकान खुली थी। चन्दन की भड़की हुई तबीयत यहाँ तक आते-आते लगभग शान्त हो गई थी। उसके मन में केवल उत्सुकता की भावना शेष थी। और इसी के अधीन उसने हलवाई की दुकान से आध सेर गर्म-गर्म दूध पिया।

और जैसे नई उमंग पाकर वह आगे बढ़ा।

दोनों ओर की दुकानें बन्द थीं। बाईं ओर के 'माशा अल्लाह होटल' में, जहाँ संध्या के समय इतनी भीड़ होती है कि एक-एक कुर्सी पर दो-दो व्यक्ति बैठे होते हैं, इस समय निस्तब्धता छाई हुई थी और एक मैले-से बेंच पर होटल का एक नौकर बैठा खाना खा रहा था। दायें-बायें कहीं-कहीं किसी पनवाड़ी या हजाम की दुकान खुली थी। एक हेयर कटिंग सैलून में (जिसके तख़्ते पर दिन को रंगरेज़ बैठा करता है) इस समय एक श्रमिक (जिसे शायद दिन में अवकाश न मिलता था) बैठा सिर पर उस्तरा फिरवा रहा था।

काठ बाज़ार के सिरे पर चन्दन क्षण भर के लिए रुका। ताँगों के अड्डे पर एक-दो ताँगेवाले अभी तक घूम रहे थे। ताँगा शैड के ऐन ऊपर चाँद चमक रहा था। धुएँ और गर्द ने चाँदनी के मुख को मैला कर दिया था। वह काठ बाज़ार में दाख़िल हुआ। और चकित-सा एक चौबारे की ओर देखने लगा जिसमें गैस की रोशनी के सम्मुख एक 'सुन्दर' वारांगना बैठी थी। चन्दन की भरी हुई उमंग फिर जागी, किन्तु नीचे चौक में अभी तक काफी भीड़ थी। इतने उज्ज्वल प्रकाश तथा इतने लोगों के सामने उसके लिये मामले की बात करना सर्वथा असम्भव था। उसने नीचे की कोठरियों की ओर देखा। हरेक कोठरी के आगे एक-एक गंदा मैला-सा पर्दा लटक रहा था और उसके बाहर एक-एक लैम्प जिसके सामने एक-एक स्त्री खड़ी या बैठी थी।

कभी-कभी किसी कोठरी का दरवाज़ा बन्द हो जाता और किसी व्यक्ति के पीछे लैम्प उठाये हुए उस कोठरी की मालकिन उस मैले गन्दे पर्दे के पीछे चली जाती—पल भर के लिए उभरी हुई उमङ्ग चन्दन को फिर डूबती हुई प्रतीत हुई। और वह ज़रा आगे बढ़कर (मानो सहारे के लिए) एक कुर्सी पर बैठ गया, जो ऐन चौक में बिछी हुई थी और जिसके पास एक मेज़

पर रंग-बिरंगी बोतलें रखे एक चम्पी करनेवाला हजाम लड़का खड़ा था।

'चम्पी कराओगे?'

चन्दन ने अनजाने ही में 'हाँ' कर दी। पास ही एक और ऐसी ही दुकान सजी थी और उसके परे एक लम्बे बरामदे में अपनी-अपनी कोठरियों के सामने रूप (यद्यपि रूप उनमें से एक के पास भी न था, यह कहना मुश्किल है) तथा स्त्रीत्व का व्यापार करने वाली कई वारांगनाएँ खड़ी अपने-अपने ग्राहकों को बुला रही थीं। खड़े-खड़े थक जाने के डर से या अपने वक्ष का उभार दिखाने के लिए उन्होंने छत से रस्सियाँ लटका रखी थीं, जिनके सहारे वे खड़ी हो जाती थीं।

चन्दन के सिर में तेल गिरने से एक लिजलिजी-सी सरसराहट हुई और हजाम लड़का चम्पी करने लगा। चम्पी करने के बाद चन्दन के मस्तक और गर्दन को उसने एक अत्यन्त गन्दे तौलिये से पोंछकर उसके बाल बना दिये।

चन्दन जब वहाँ से उठा तो उसे नाक में सस्ते खुशबूदार तेल की तीखी गंध आ रही थी और उसकी उमंग फिर जैसे जग उठी थी। चौक छोड़ वह एक गली में हो गया। यहाँ लोग कम थे और रोशनी भी इतनी तेज़ न थी। वह एक बार गली के दूसरे सिरे तक जाकर मुड़ आया। उसे समझ न आती थी कि वह कैसे बातचीत शुरू करे। वह तो उनसे आँखें भी न मिला पाता था। ध्यान मात्र ही से उसका दिल धक्-धक् करने लग जाता था। उसने सोचा, वापस चला जाय। उसे जेठू के साथ आना चाहिए था। और उसने सोचा, गली को पार करके वह दूसरे रास्ते से निकल जायगा। किन्तु इतनी दूर आकर वह जाना भी न चाहता था। उसी समय एक कोठरी के आगे कुछ अँधेरे में बैठी हुई एक मोटी थल-थल, पल-पल स्त्री ने उसकी मुश्किल आसान कर दी। उसके पास दो छोटी-छोटी लड़कियाँ फ़र्श पर ही दरी बिछाये लेटी हुई थीं—बिलकुल कासनी ही की वयस की—'आओ आओ, इधर आओ, प्यार से उसने कहा।

चन्दन बढ़ा।

बड़े धीमे भेद-भरे स्वर में उसने कहा—'आओ, सोचते क्या हो? बारह आने...'

इशारा उसी कोठरी के बाहर बैठी हुई स्त्री की ओर था, जो केवल एक काली बनयान और काली साड़ी पहने लोहे की कुर्सी पर बैठी थी, जिसकी बग़लों में बाल तक दिखाई देते थे और जिसकी छातियाँ ढली हुई ककड़ी की भाँति लटक रही थीं।

चन्दन ने उसके पास धरती पर आधी लेटी और आधी बैठी लड़की की ओर आकांक्षा भरी दृष्टि से देखा, उसके नाक में छोटी-सी नथ भी थी और उसने जेठू से सुना था कि इन लोगों में यह नथ कौमार्य्य का चिन्ह होती है।

समझ कर मोटी स्त्री ने कहा—'यह तो अभी बहुत छोटी है, यह सब अभी यह क्या जानें।'

चन्दन के मस्तिष्क में कच्ची नाशपातियाँ घूम गईं, फिर कासनी और फिर कच्ची नाशपातियाँ।

और मोटी स्त्री ने कहा—'दो रुपये लगेंगे।

चन्दन चुप रहा। वह कहना चाहता था, 'दो रुपये बहुत हैं।'

तभी मोटी स्त्री ने कहा, 'अच्छा तो डेढ़ सही। अभी तो नथ भी नहीं उतरी।'

चन्दन की नसों में दूध उबलने लगा। उसका शरीर गर्म होने लगा। दूसरे क्षण वह गन्दे मैले पर्दे के अन्दर चला गया और उसके पीछे-पीछे लैम्प और उस लड़की को लिये हुए वह मोटी स्त्री!

× × ×

एक सप्ताह के बाद सिर पर अपना बोरिया-बिस्तर उठाये चन्दन पोर्च में खड़ा था और अन्दर कमरे में उसके मालिक अपनी पत्नी को आदेश दे रहे थे—मैं अभी डाक्टर को भेजता हूँ। सब मकान को डिस-इन्फ़ेक्ट (disinfect) करवा लेना। सब जगह तो जाता रहा है कम्बख़्त!

और चन्दन बेबसी की दशा में खड़ा सोच रहा था, पर लड़की की आयु तो तेरह वर्ष की भी न होगी और उसकी तो अभी नथ भी न उतरी थी।

लेखक की अन्य कृतियाँ

पिंजरा—(कहानी संग्रह) घुन लगे हुए समाज का आर्थिक एवं यथार्थ चित्रण।

सितारों के खेल—(उपन्यास) जिसका अनुवाद उसके प्रकाशन के छः महीने बाद अन्य प्रान्तीय भाषाओं में हो गया।

जय-पराजय—(नाटक) जिसकी आठ हज़ार प्रतियाँ अब तक बिक चुकी हैं।

छटा बेटा—(नाटक) आधुनिक ढङ्ग की एक रोचक फ़ांत्सी (Fantasy) कल्पना-मिश्रित नाटक।

स्वर्ग की झलक—(नाटक) आधुनिक ढङ्ग का एक सामाजिक व्यंग्य।

देवताओं की छाया में—(एकांकी-संग्रह) अपने इन सामाजिक नाटकों में श्रीअश्क ने वे नश्तर लगाये हैं, जिनसे लहू तो नहीं निकलता, पर जो दिल की गहराइयों तक उतरते चले जाते हैं।

चरवाहे—(एकांकी संग्रह) कहने को तो यह श्री 'अश्क' के सांकेतिक (symbolic) नाटकों का एक संग्रह है पर वास्तव में यह उन रहस्यों का उद्घाटन करता है जो हमारे अर्ध-चेतन मन के अँधेरे पर्दों में छिपे रहते हैं।

प्रात-प्रदीप—(कविताएँ) चिरन्तन प्रेम और विरह की घनीभूत आत्मोन्भूति में समोई हुई कविताएँ।

ऊर्म्मियाँ—(कविताएँ) करुणा, पीड़ा और मोह-कता वही पर अंधकार में ज्योति की रेखाएँ उभर आई हैं और कवि का दुःख समाज का, विश्व का दुःख बन गया है।

उर्दू काव्य की एक नयी धारा:—आलोचना का एक पठनीय ग्रन्थ जिसमें उर्दू की १०० सरल सुन्दर कविताएँ भी संकलित हैं।